महाकवि भासकृत

स्वप्नवासवदत्त

अन्वय, पदार्थ, हिन्दी अनुवाद, व्याकरण,
शब्दार्थकोष तथा छात्रोपयोगी अन्य
आवश्यक सामग्री सहित

सम्पादक
संसारचन्द्र एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत),
अध्यक्ष, संस्कृत-हिन्दी-विभाग,
सनातन धर्म कालिज,
अम्बाला छावनी।

प्रकाशक
मेहरचन्द लछमणदास
अध्यक्ष, संस्कृत पुस्तकालय
कूचा चेलां, गली ननौता,
दरियागंज, दिल्ली-६

सन् १९५८

१९१२ ईस्वी में उपर्युक्त नाटको का प्रकाशन हुआ। ये नाटक कुछ निराले ढग के थे। अन्य नाटको की अपेक्षा इनमें एक विशेष अन्तर था। सस्कृत-नाटको मे प्राय प्रस्तावना के आदि में नाटककार का थोडा बहुत परिचय अवश्य होता है। ऐसी ही परिपाटी उस समय सस्कृत-नाटको में प्रचलित थी। परन्तु इन सारे नाटको में इसका सर्वथा अभाव था। इस कारण विद्वानो के आगे यह एक कठिन समस्या थी कि वास्तव में इन नाटको का रचयिता कौन है। नाटककार का निश्चय करने से पूर्व, पहला प्रश्न यह था कि क्या ये सब नाटक एक ही कलाकार की कृतियाँ हैं, अथवा भिन्न-भिन्न कलाकारो की। प० गणपति शास्त्री, प्रो० कीथ, जैकोबी और विन्टरनिट्ज आदि विद्वानो ने बाहर के और भीतर के प्रमाणो के आधार पर सिद्ध किया कि ये सब नाटक एक ही ग्रन्थकार द्वारा लिखे गये हैं। जिन प्रमाणों के बल पर उपर्युक्त निश्चय किया गया, उनमें से कुछेक नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

(१) ये सभी नाटक 'नान्द्यन्ते तत प्रविशति सूत्रधार' के नाटकीय निर्देश से आरम्भ होते हैं। अन्य सब नाटको का प्रारम्भ नान्दी से होता है।

(२) प्रस्तावना बडी सक्षिप्त है।

(३) सभी नाटकों में प्रस्तावना का नाम 'स्थापना' मिलता है।

(४) सभी नाटको को प्राय एक ही प्रकार के भरतवाक्य से समाप्त किया गया है।

(५) नाटकों में परस्पर वाक्यो की समानता, भावो तथा दृश्यो का सादृश्य प्राय. देखने को मिलता है।

(६) कही-कही[1] पात्रो के नाम भी परस्पर मिलते हैं।

---

१ बहुत से नाटको में द्वारपालिका का नाम 'विजया' है। इसी तरह और भी हैं।

(७) नाटको में परस्पर सम्बन्ध भी है। जैसे स्वप्नवासवदत्त[1] और प्रतिज्ञायौगन्धरायण।

(८) सभी नाटक आकार की दृष्टि से लघु हैं।

(९) सभी नाटको में कुछ अपाणिनीय आर्ष प्रयोग मिलते हैं।

(१०) सभी नाटको की भाषा-शैली सरल तथा स्वाभाविक है।

ऊपर लिखे हुए प्रमाणो के अनुसार इस पर दो मत नही हो सकते कि ये तेरह-के-तेरह नाटक, एक ही नाटककार की लेखनी का फल हैं।

इसके बाद दूसरा प्रश्न उठता है कि वह रचयिता है कौन ? इस सम्बन्ध में भी विद्वानो ने पूरी तरह जाँच की है। इन नाटको की भली भान्ति परीक्षा करने के बाद और कुछेक बाहर के प्रमाणो को ध्यान में लाते हुए, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वह नाटककार केवल भास ही है। जिन प्रमाणो के बल पर वे लोग, इस निश्चय को दृढ कर सके हैं, उनमें से कुछेक पाठको के विचार के लिए अंकित किये जाते हैं :—

(१) भास एक सफल नाटककार हुआ है। इस तथ्य की पुष्टि में कालिदास तथा बाण की उक्तियाँ प्रमाण हैं। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में इसको एक प्रसिद्ध प्राचीन नाटककार माना है। इसी प्रकार बाण ने हर्षचरित की भूमिका में भास का यशोवर्णन करते हुए, इसके नाटको की विशेषताओ के विषय में स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है। जिसके आधार पर भास को एक अच्छा नाटककार होने के अतिरिक्त एक भिन्न शैली[2] का सचालक भी मानना पडता है। बाण द्वारा वर्णित शैली का पालन इन तेरह-के-तेरह नाटको में मिलता है। जिससे भास के इन नाटको के रचयिता होने की सम्भावना अधिक सङ्गत दिखाई देती है।

---

१ प्रतिज्ञायौगन्धरायण की कथा के बाद स्वप्नवासवदत्त की कथा चलती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो दोनो क्रमश. पहला और दूसरा भाग हैं।

२. सूत्रधार-कृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।—हर्षचरित

(२) भास को विद्वानो ने निर्विवाद रूप से प्राचीन नाटककार माना है। इन तेरह नाटको में अनेक स्थलो पर बहुत से पुराने प्रयोग मिलते हैं, जिससे मानना पडता है कि ये नाटक प्राचीन हैं। इसलिए प्राचीन नाटककार भास ही है, जो इनका रचयिता माना जा सकता है।

(३) आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनी नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनव भारती' में स्वप्नवासवदत्त को भास कृत ठहराया है। स्वप्नवासवदत्त इन तेरह नाटको में से एक है। जब ये तेरह-के-तेरह नाटक एक ही लेखनी का फल समझे जाते हैं, तो कोई कारण नही कि इन सब का रचयिता केवल भास मानने में कोई आपत्ति उठाई जाय।

(४) राजशेखर को भी भास का बहुत से नाटको का रचयिता होने का ज्ञान था। इसीलिए उसने सूक्तिमुक्तावलि में भास के स्वप्नवासवदत्त की प्रशसा करते हुए उसके नाटक-समूह का निर्देश किया है। ये नाटक-समूह यही तेरह नाटक हो सकते हैं। स्वप्नवासवदत्त के नामोल्लेख से तो स्पष्ट हो जाता है कि भास के नाटक-समूह में से इसका विशेष प्रचार था और यह वही नाटक है जिसका भास निर्विवाद रूप से रचयिता माना जाता है।

इतने प्रबल प्रमाण होने पर भी, कुछेक भारतीय तथा पश्चिमीय विद्वान् इन नाटको को भासकृत मानने के पक्ष में नही हैं। इनमें से प० रामावतार शर्मा और डा० बार्नेट के नाम उल्लेखनीय हैं। चाहे कुछ भी हो, यह कहना ही पडता है कि इन विद्वानो के मतो की भित्ति सदेह ही है। वास्तव में अपने मतो की पुष्टि के लिए इनके पास कोई प्रबल प्रमाण नही है।

भास के सम्बन्ध में—

हम पहले भी बता आये हैं कि भास एक महाकवि और सफल नाटककार हुआ है। इसका यश सारे भारतवर्ष में फैल चुका था। यह स्वीकार करते हुए, हमें खेद होता है कि भारत के इस प्रख्यात कलाकार के सम्बन्ध में हम कुछ नही जानते। इसके जीवन तथा अन्य बातो के विषय में कुछ

भी निश्चयपूर्वक कहना सम्भव नही है । केवल एक अनुमान ही है, जिसका हमें वार-वार सहारा लेना पडता है । इस प्रकार भी जो कुछ हमें पता लगता है, वह इतना अपर्याप्त है कि उससे हम कोई विशेष सामग्री एकत्रित नही कर सकते । परन्तु फिर भी अंग्रेजी की कहावत 'न होने से थोडा ही अच्छा है'[१] के अनुसार कुछ अनुमानित वातें लिखी जाती हैं—

(१) भास वलदेव का उपासक था ।[२]

(२) वह उत्तर भारत का रहने वाला था ।

(३) वह यात्राप्रिय नही था और इसीलिए उसने अधिक यात्रा नही की थी ।

(४) वह स्वर्ग को मानने वाला था तथा उसे स्वर्ग में अप्सराओ की प्राप्ति पर भी विश्वास था ।[३]

(५) भास किसी राजसिंह नाम वाले राजा के राज्य में हुआ था ।[४]

भास का समय—अन्य वातो की तरह भास का समय भी अनिश्चित है । भास कब हुआ, इस सम्वन्ध में ऐतिहासिको के भिन्न-भिन्न मत हैं । पर्याप्त सामग्री के अभाव में, किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचना कठिन है । अपने-अपने विचार के अनुसार आलोचको ने ईसा से पांच शताब्दी पूर्व से लेकर पाँच शताव्दी वाद तक के लम्वे समय में, भास का काल निर्धारित किया है । विचार-भिन्नता भी कोई सौ दो सौ वर्षों तक सीमित नही, वरन् १००० वर्ष की लम्वी अवधि को घेरे हुए है । इस अवस्था में भास के काल का प्रश्न एक जटिल समस्या का रूप धारण कर लेता है । फिर भी जो कुछ वातें इस सम्वन्ध में महत्त्व रखती हैं, आगे अङ्कित की जाती हैं—

---

१ Some thing is better than nothing.

२. वलस्य त्वाम् ।—स्वप्न० १.१

३. अनप्सरस्सवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते ।—स्वप्नवासवदत्त ४. १

४. राजसिंह प्रशस्तु न. ।—स्वप्न ६.१९

(१) 'मालविकाग्निमित्र' में कालिदास ने भास का वर्णन किया है। इससे स्पष्ट है कि भास का स्थितिकाल प्रत्येक अवस्था में कालिदास से पूर्व ठहरता है। परन्तु खेद है कि कालिदास का समय भी संस्कृत-साहित्य का एक उलझा हुआ प्रश्न माना जाता है। फिर भी कालिदास के समय के अन्तर की सीमा बहुत फैली हुई नही है। उसके लिए कई ईसा से एक शताब्दी पूर्व और दूसरे ईसा की चौथी शताब्दी के लगभग का समय निर्धारित करते हैं। छठी शताब्दी वाला फर्गुसन-मत तो अब प्राय निराधार हो चुका है। इसलिए भास हर अवस्था में चौथी शताब्दी से प्राचीन है।

(२) 'मृच्छकटिक' के रचयिता शूद्रक ने अपने नाटक मे भास के 'चारुदत्त' का ही विस्तार किया है। वेल्वल्कर महोदय के शोध के आधार पर इस मत को मान्यता प्राप्त हो चुकी है। इससे भास शूद्रक से प्राचीन सिद्ध होता है। शूद्रक का समय बहुमत से ईसा की तीसरी शताब्दी पूर्व ठहराया जाता है। इससे भास अवश्य (ईसा-पूर्व) तीसरी शताब्दी से पहले हुआ है।

(३) भास के प्रतिमा नाटक के पाचवें अङ्क में बृहस्पतिकृत अर्थशास्त्र[1] का वर्णन है और चाणक्यकृत अर्थशास्त्र का नही है। बृहस्पति का अर्थशास्त्र चाणक्य से प्राचीन है। चाणक्य के अर्थशास्त्र के प्रचलित होने से पहले बृहस्पति के अर्थशास्त्र को मान्यता मिलती थी, इसमें कोई सन्देह नही है। इसलिए भास अवश्य चाणक्य से पहले हुए हैं। चाणक्य का समय बहुमत से ईसा की तीसरी शताब्दी (पूर्व) माना जाता है। इससे हम भास को ईसा की चतुर्थ शताब्दी के प्रारम्भ में या तृतीय शताब्दी के अन्तिम भाग में रख सकते हैं।

(४) भास के पुराने ढग के प्रयोगो को देखकर भी इसकी प्राचीनता माननी पडती है। व्यपाश्रयणा[2], अभ्यवपत्तुकाम[3] इत्यादि प्रयोग

---

१ बार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्रम्।—प्रतिमा नाटक।

२ स्वप्न० १ ६ ३ स्वप्न० १ १२

पुराने हैं जो कि अर्थशास्त्र की सस्कृत का अनुकरण करते हैं ।

(५) कई विद्वानो के मत से भास की भाषा अश्वघोष के अधिक समीप है, इसलिए भास अश्वघोष का समकालीन ठहरता है । पश्चिमीय विद्वानो के मतानुसार अश्वघोष की प्राकृत निस्सदेह भास से पुरानी है । इस विचार के अनुसार भास का समय अश्वघोष के बाद ईसा की प्रथम शताब्दी के अन्तिम भाग में वा दूसरी शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में निश्चित किया जाता है । इस मत के मानने वालो की सख्या अब बहुत कम होती जा रही है । प्राकृत के प्राचीनता एव अर्वाचीनता के सम्बन्ध मे एकमत होना कठिन है ।

(६) कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण का एक श्लोक[1] उद्धृत किया है जो भास की प्राचीनता का प्रबल प्रमाण है ।

उपर्युक्त प्रमाणो के बल पर, विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि भास का समय ईसा-पूर्व तीसरी अथवा चौथी शताब्दी के आसपास का है । कालिदास और शूद्रक से भास किसी अवस्था में भी अर्वाचीन नही हो सकता ।

भास के नाटको का सक्षिप्त परिचय—

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसे स्वप्नवासवदत्त का पूर्वभाग कहा जा सकता है । यह छ अङ्को का नाटक है । इसमें उदयन और वासवदत्ता के प्रेम का वर्णन है, यौगन्धरायण की स्वामि-भक्ति और नीतिपटुता का भी बडा सुन्दर वर्णन है ।

पञ्चरात्र—इसके सारे पात्र महाभारत के हैं, परन्तु कथानक में भारी अन्तर है । महाभारत की कथा का बिल्कुल उलट है । इसमें द्रोण के पाँच दिन के अन्दर पाडवो को ढूंढ कर आधा राज्य दिलाने का वर्णन है । नाट्यशास्त्र के अनुसार यह तीन अको का एक समवकार है ।

चारुदत्त—इसमें निर्धन ब्राह्मण चारुदत्त और वसन्तसेना के अनूठे

---

१ नव शराव सलिलस्य पूर्णं सुसस्कृत दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य मा भून्नरक च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्यते ।।—अर्थशास्त्र

प्रेम का वर्णन है। इसके केवल चार अङ्क ही हैं और बाकी भाग नही मिलता । शूद्रक के 'मृच्छकटिक' नाटक का यही आधार है।

दूतघटोत्कच—इसमें हिडिम्बा से उत्पन्न भीम के पुत्र घटोत्कच का दूत बनकर दुर्योधन के पास जाने का वर्णन है।

अविमारक—इसमें राजकुमार अविमारक और राजकुमारी कुरङ्गी की प्रेमगाथा बडे सुन्दर ढग से उपस्थित की गई है।

बालचरित—इसमें श्रीकृष्ण जी ने जिस प्रकार बाल्यकाल मे लीला द्वारा पापियो का नाश किया, उसका दिग्दर्शन कराया गया है। नाटक में कृष्ण-जन्म से लेकर कसवध तक की कथा वर्णित है।

कर्णभार—इसमें दानवीर कर्ण के दान का सर्वोच्च आदर्श दिखलाया गया है। इन्द्र का ब्राह्मण-वेष धारण कर कर्ण मे कवच-कुण्डल मांग ले जाना इत्यादि बातो का वर्णन है।

ऊरुभङ्ग—इसमें भीम और दुर्योधन के गदा-युद्ध का वर्णन है। नाटक युद्ध के भावो से भरा हुआ है। इसमें दुर्योधन की मृत्यु का करुणाजनक वर्णन है। इसमें सकलनत्रय का भली भाति पालन किया गया है।

मध्यम व्यायोग—इसमें भीम के भयानक पराक्रम का वर्णन है। किस प्रकार भीम एक क्रूर राक्षस मे ब्राह्मण के लडके की रक्षा करता है, इसका बडा विचित्र वर्णन है।

अभिषेक—इसका आधार रामायण है। इसमें राम-रावण-युद्ध तथा राम-राज्याभिषेक आदि बातो का वर्णन है। इस नाटक में छ अङ्क हैं।

प्रतिमा—इसकी कथा रामायण से ली गई है। इसमें राम-वनवास की बातो से लेकर रावण की मृत्यु तक की घटनाओ का समावेश है। यह सात अङ्को का नाटक है।

दूतवाक्य—इसमें महाभारत के युद्ध को रोकने के लिए श्रीकृष्ण का दूत बनकर दुर्योधन के पास जाने का वर्णन है। दुर्योधन के छलकपट में न फँसकर श्रीकृष्ण जी का निराश होकर लौटना आदि बातें वर्णित हैं।

भास नाटककार के रूप मे—

इतनी बडी सख्या में भिन्न-भिन्न प्रकार के नाटक लिखने के कारण ही भास को सस्कृत-नाट्य-साहित्य में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ है। यह एक उत्कृष्ट कवि और सफल नाटककार हैं, नही तो कालिदास जैसे सर्वश्रेष्ठ कलाकार भला क्यो इनकी प्रशसा करते ! इन्होने तेरह नाटक लिखे हैं परन्तु कही भी कथावस्तु की मौलिकता पर आंच नही आने दी। नाटको की कथावस्तु का प्रवाह भी यथोचित रूप से आगे बढता हुआ दिखाई देता है और लम्बे-लम्बे वर्णनो से कही भी नही रुकता। सरलता और स्वाभाविकता इनकी शैली के विशेष गुण हैं और जटिलता छू तक भी नही पाई है। क्लिष्ट शब्द-भण्डार और आडम्बर का नाम तक भी नही है, लम्बे समास कही ढूंढने पर भी नही मिलते।

चरित्रचित्रण की दृष्टि से भी भास एक कुशल नाटककार हैं। स्वप्नवासवदत्त में वासवदत्ता और पद्मावती के चरित्र ऐसे सुन्दर सम्पन्न हुए हैं कि दोनो की तुलना करनी कठिन हो जाती है। आलोचक निर्णय नही कर पाता कि दोनो नायिकाओ में कौन बढकर है। इसी तरह पात्रो के कथोपकथन अत्यन्त सजीव और भावपूर्ण है। हरेक पात्र की भाषा अपनी-अपनी स्थिति, व्यवसाय और जाति आदि के अत्यन्त अनुकूल बनी है, जिससे सन्दर्भ की स्वाभाविकता पद-पद पर झलकती है। भास का विदूषक भी अपना एक विशेप व्यक्तित्व रखता है। उसका हास्य भी बडा सरल और प्रभावोत्पादक है। इसके कथन समय के अनुकूल और स्वाभाविक होते हैं। इसके अन्य पात्र भी प्राय थोडा बोलने वाले और आडम्बर-रहित होते हैं। पुरुपपात्रो की सख्या अधिक है, जोकि प्राय. युद्ध-विषयक बातो में विशेष प्रीति रखते हैं।

अन्य नाटककारों की अपेक्षा भास की सबसे बडी विशेषता इनका शुद्ध प्रेम का वर्णन है। इन्होने कही भी अनुचित शृङ्गार को नही आने दिया—प्रेम का सच्चा तथा वासनाहीन स्वरूप चित्रित किया है। प्रेम में

वलिदान की भावना अनिवार्य है। स्वप्नवासवदत्त की वासवदत्ता जिस प्रेमी के लिए माता-पिता आदि सब कुछ छोड कर चली जाती है, कर्तव्य की पुकार सुनने पर उसको भी त्याग कर यौगन्धरायण के साथ चली जाती है। इससे बढकर वलिदान भला क्या हो सकता है।

कई आलोचक[1] भास को एक ऊँचे दर्जे का नाटककार मानने में आपत्ति करते हैं। वे कहते हैं कि भास की उडान ऊँची नहीं है। कल्पनारूपी रङ्गों के अभाव में इसके चित्र कहीं-कहीं फीके दिखाई देते हैं। इसमें सदेह नही कि इन्होने कल्पना का अधिक आश्रय नही लिया। नाटक की कथा के मार्मिक स्थलो पर जहाँ इनकी लेखनी अपना पूरा कौशल दिखा सकती थी, इन्होने कुछ सकोच से ही काम लिया है। वर्णन में हृदय की गहराई एव अनुभूति प्रविष्ट नही हो पाई। परन्तु यह मानना ही पडेगा कि इनके वर्णन यथार्थ होते हुए भी सौंदर्य से हीन नही हैं और यही इनकी सवसे वडी विशेषता है।

नाटकीय कथावस्तु—

वत्सदेश का राजा उदयन बडा शूरवीर और प्रतापी था। अवन्ति-राजकुमारी वासवदत्ता से विवाह करने के वाद, वह उसके प्रेम में प्राय लीन रहने लगा। ऐसी स्थिति में, अवसर पाकर उसके शत्रु आरुणि ने उसके राज्य के अधिकाश भाग पर अधिकार जमा लिया। राजा के मन्त्री वहुत चिन्तित हुए और शत्रुनाश का कोई उपाय सोचने लगे। अन्त में वे इस निर्णय पर पहुँचे कि मगधराज दर्शक की सहायता के

---

1 His imagination does not soar high There are many situations in 'Swapnavasavadatta' where Kalidasa and Bhavabhuti would have lavished their glowing poetry and fine description but our poet is content with one feeble line or two

Prof. P P. Sharma.

विना शत्रु को निकालना सम्भव नही। दर्शक मे सैनिक सहायता प्राप्त करने का केवल एक ही उपाय था कि उदयन का विवाह उसकी वहन पद्मावती से करा दिया जाय। सिद्ध लोगो ने भी पद्मावती और उदयन के विवाह की भविष्यवाणी की थी। परन्तु चाहे कुछ भी हो, वासवदत्ता के जीवित रहते, यह विवाह कभी सम्भव नही हो सकता था।

राजा का विवाह पद्मावती से कराने के लिए, मन्त्रियो ने एक षड्यन्त्र रचा। उन्होने, राजा के शिकार के लिए चले जाने पर, लावाणक ग्राम को जलवा कर प्रसिद्ध कर दिया कि वासवदत्ता और यौगन्धरायण जल गये हैं। इधर वासवदत्ता और यौगन्धरायण वेष बदल कर मगध के एक तपोवन में पहुँच गये। वहाँ पद्मावती तपस्वियो को मनोवाञ्छित दान देने की घोषणा करवा रही थी। ऐसे अवसर से लाभ उठा कर, यौगन्धरायण ने वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रखवा दिया।

जव राजा ने वासवदत्ता की मृत्यु का वृत्तान्त सुना तो वह वहुत दुःखित हुआ। रुमण्वान् मन्त्री ने वडी कठिनता से उसे धैर्य वँधाया। कुछ समय वाद राजा मगध गया और वहाँ पद्मावती से उसका विवाह हो गया। उदयन कुछ समय के लिए वही रहने लग पडा। वह अव भी प्राय. वासवदत्ता की याद आने पर व्याकुल हो जाया करता था।

एक दिन पद्मावती के सिर की पीडा का समाचार सुनकर राजा उसे देखने के लिए समुद्रगृह में गया। पद्मावती उस समय वहाँ नही थी। राजा वही शय्या पर सो गया। इतने में पद्मावती की सिर की पीडा का समाचार सुनकर, वासवदत्ता भी वहाँ आ पहुँची और यह समझ कर कि पद्मावती सो रही है, उसी शय्या पर लेट गई। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता से वातें करने लगा और वह उत्तर देने लगी। इतने में वासवदत्ता को ज्ञात हो गया कि वह उदयन को पद्मावती समझ रही है फिर इस भय से कि कही राजा को पता न लग जाय, वह वहाँ से चलने लगी। राजा का हाथ शय्या से नीचे लटक रहा था। उसे शय्या पर

रख कर चल पडी। राजा इस स्पर्श से चौंक कर जाग पड़ा और जाती हुई वासवदत्ता को पकडने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु वह उस समय द्वार से वाहर निकल चुकी थी।

कुछ समय के बाद, दर्शक की सैनिक सहायता प्राप्त करके उदयन ने अपना खोया हुआ राज्य वापिस ले लिया। वह फिर शक्तिशाली राजा हो गया। एक दिन उज्जयिनी से वासवदत्ता के माता-पिता का सन्देश लेकर, वासवदत्ता की धात्री और कञ्चुकी वहाँ आये। उनके पास वासवदत्ता और उदयन का एक चित्र था, जो वे उदयन को देने के लिए लाये थे। पद्मावती ने चित्र देखते ही पहचान लिया कि यह उसी आवन्तिका का चित्र है, जिसे एक ब्राह्मण उसके पास धरोहर के रूप में रख गया था।

इतने में यौगन्धरायण भी अपनी धरोहर वापिस लेने के लिए वहाँ आ पहुँचा। जब वासवदत्ता वहाँ लाई गई तो धात्री ने झटपट उसे पहचान लिया। उस समय वासवदत्ता और यौगन्धरायण ने अपने आप को प्रकट कर दिया। राजा वासवदत्ता को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और दोनो रानियो सहित सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

अङ्को की सक्षिप्त कथा—

प्रथम अङ्क—परिव्राजक-वेषधारी यौगन्धरायण और आवन्तिका-वेषधारिणी वासवदत्ता मगध के एक तपोवन में पद्मावती के पास जाते हैं। पद्मावती तपस्वियो को मनोवाञ्छित दान देने के लिए घोषणा करवाती है। अच्छा अवसर जान कर यौगन्धरायण वासवदत्ता को उसके पास धरोहर के रूप में रखने की इच्छा प्रकट करता है और वह मान जाती है।

इतने में एक ब्रह्मचारी वहाँ आकर लावाणक ग्राम के जल जाने से यौगन्धरायण और वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार सुनाता है। वह वतलाता है कि राजा इस घटना के कारण अत्यन्त उद्विग्न है और वडी

कठिनता से मन्त्री रुमण्वान् उसे सँभाले हुए है। इतना कहकर ब्रह्मचारी चला जाता है। इसी समय यौगन्धरायण भी चला जाता है। राजा की अवस्था का वर्णन सुनकर पद्मावती के मन में उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है।

द्वितीय अङ्क—पद्मावती और वासवदत्ता चेटी के साथ, माधवीलता-मण्डप में कन्दुकक्रीड़ा में लगी हुई हैं। बातों-बातों में उदयन का वर्णन होने लगता है। पद्मावती बतलाती है कि वह उदयन से प्रेम करती है। इतने में चेटी कह बैठती है कि सभव है राजा उदयन कुरूप हो। यह सुनकर वासवदत्ता कह उठती है कि वह बहुत सुन्दर है। पद्मावती विस्मित होकर पूछती है कि उसे कैसे पता है। ऐसे अवसर पर वासवदत्ता अपने-आप को सँभाल लेती है और यह कह कर टाल देती है कि उज्जयिनी के रहने वाले को उदयन के दर्शन कठिन नहीं हैं। इतने में पद्मावती की धात्री आकर सूचना देती है कि पद्मावती और उदयन के विवाह की बात पक्की हो गई है। थोडी देर बाद एक और दासी आती है, जो कहती है कि आज ही विवाह होगा। वह उन सबको जल्दी करने के लिए कहती है और सब अन्दर चली जाती हैं।

तृतीय अङ्क—पद्मावती का विवाह हो रहा है। वासवदत्ता इस दृश्य को अपनी आँखो के सामने नहीं देख सकती। इसलिए वह प्रमदवन में चली जाती है। इतने में एक दासी उसके पास आती है और महारानी की तरफ से विवाह की माला गूँथने के लिए कहती है। वासवदत्ता के हृदय में अनेक विचार उठने लगते हैं। वह अपने भाग्य को कोसती है और कहती है कि क्या सौत के विवाह की माला भी मुझे ही गूँथनी थी।

वासवदत्ता सुहागवाली ओषधि को खूब गूँथती है और सौतनाशिनी को नहीं गूँथती। कुछ देर तक दासी आकर माला ले जाती है और वह वहीं दु ख-सागर में पडी रहती है।

चतुर्थ अङ्क—एक दिन वासवदत्ता और चेटी के साथ पद्मावती प्रमदवन में घूम रही थी। इतने में राजा और विदूपक भी वहाँ आ गये।

लए सज्जित होकर चला गया।

षष्ठ अङ्क—विजय के बाद एक दिन, राजा को वासवदत्ता की खोई हुई घोषवती नाम वाली वीणा प्राप्त होती है। इस वीणा के मिलने से राजा बहुत उद्विग्न हो उठता है और तरह-तरह के विलाप करने लगता है। कुछ समय बाद महाराज प्रद्योत और अङ्गारवती के सदेश लेकर, कञ्चुकी और वासवदत्ता की धात्री वहाँ आ पहुँचते हैं। वे राजा और वासवदत्ता का चित्र लेकर आते हैं और राजा को चित्र देखकर सतोष करने का आग्रह करते हैं। इतने में पद्मावती उस चित्र को देखती है और पहचान लेती है कि यह चित्र उसी युवती का है, जिसको वह ब्राह्मण धरोहर के रूप में उसके पास छोड गया था। वह राजा को कहती है कि इसी तरह की एक लडकी उसके पास धरोहर के रूप में रहती है। इतने में यौगन्धरायण अपनी धरोहर वापिस लेने के लिए वहाँ आ पहुँचता है। इस पर वासवदत्ता वहाँ लाई जाती है। धात्री उसे देखते ही पहचान लेती है। फिर यौगन्धरायण भी छद्म-वेप को त्याग कर अपने वास्तविक-रूप में प्रकट होता है। राजा वासवदत्ता और यौगन्धरायण को पाकर बहुत प्रसन्न होता है। वह वासवदत्ता के माता-पिता को यह शुभ समाचार सुनाने के लिए सपरिवार उज्जयिनी जाने की तैयारी करने लगता है।

चारित्रिक अनुशीलन—

उदयन

राजा उदयन इस नाटक का नायक है। महाकवि भास के अनुसार यह पाण्डवो का वशज है। वह रूप और कुलीनता में अद्वितीय है। इसमें इतना वीरत्व नही। यह विपत्ति के समय धैर्य से काम नही लेता। स्निग्ध प्रेमी की दृष्टि से अवश्य ही इसका स्थान बड़ा ऊँचा है। वासवदत्ता के प्रेम में अधिक आसक्त होने के कारण ही, वह राजकार्यों से उदासीन रहने लगा था। उदयन की दुर्बलता के कारण ही उसके शत्रु आरुणि का पलडा भारी हो गया था और वह राज्य के बहुत से भाग से हाथ धो बैठा था। यदि वासवदत्ता और यौगन्धरायण अपने महान्

त्याग से इसकी रक्षा न करते तो राज्य नष्ट हो जाता।

पति के रूप में उदयन का चरित्र बहुत ऊंचा है। वासवदत्ता के जल जाने का समाचार सुन कर वह उसी अग्नि में कूद कर अपने प्राणो की समाप्ति करना चाहता है। रुमण्वान् मन्त्री के बहुत समझाने पर उस की अवस्था संभलती है। प्रथमाङ्क में राजा की दशा का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी कहता है—

'ततस्तस्या शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषान्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगत ।'

ब्रह्मचारी तो राजा के ऐसे दृढ और निःस्वार्थ प्रेम को देख कर अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करता है और 'मृता वासवदत्ता' के भाग्य की इस प्रकार सराहना करता है—

'धन्या सा स्त्री या तथा वेत्ति भर्ता,
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा।'

पद्मावती जैसी राजकुमारी से विवाह हो जाने पर भी राजा वासवदत्ता को नही भूलता और उसकी याद मे प्राय आँसू बहाता रहता है। वह चतुर्थाङ्क में विदूषक के पूछने पर साफ-साफ कह देता है कि पद्मावती रूप, शील और माधुर्य से युक्त होने पर भी वासवदत्ता में आसक्त उसके मन को अपनी ओर आकृष्ट नही कर सकती।

'पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यै ।
वासवदत्ताबद्ध न तु तावन्मे मनो हरति ॥'

इससे राजा का हृदय अच्छी तरह समझा जा सकता है।

ऐसी बात नही कि राजा पद्मावती की परवाह न करता हो। उसके लिए भी राजा सदा सतर्क रहता है, उसके सिरदर्द की बात सुन कर चिन्ता में डूब जाता है। वह स्वय वासवदत्ता के वियोग में घुलता रहता है परन्तु पद्मावती को अपनी व्यथा से परिचित नही होने देता। वह नही चाहता कि उसके सुकुमार चित्त को ठेस लग जाय। राजा का हृदय स्वय सुकुमार है और इसीलिए वह किसी को कष्ट नही देना चाहता।

यहाँ तक कि उसे भौंरो तक से भी सहानुभूति है। वह उन्हे भी प्रेम-रस से वञ्चित नही करना चाहता।

एक सच्चा प्रेमी होने के अतिरिक्त, राजा बुद्धिमान् और व्यवहार-कुशल भी है। वह ससार की गति को भली भाति समझता है। छठे अङ्क में कञ्चुकी और वसुन्धरा के आने पर जब पद्मावती राजा के साथ बैठ कर इनसे मिलना नही चाहती तो राजा उसको ऐसा करने से रोकता है और कहता है—'स्त्रीदर्शन के योग्य जन को स्त्रीदर्शन से रोकना दोष उत्पन्न करता है'। इस पर वे दोनो कञ्चुकी और वसुन्धरा से मिलते हैं। ऐसी बातो से राजा की व्यवहार-कुशलता का परिचय मिलता है। गुरुजनो के प्रति भी राजा का प्रेम और श्रद्धा प्रशसा के योग्य हैं। राजा गुरुजनो से डरता भी है और अपने अपराध को मानते हुए पश्चात्ताप भी करता है। महाराज महासेन की ओर से कञ्चुकी और वसुन्धरा के आने पर वह डरने लगता है। उसे चिन्ता होने लगती है कि वासवदत्ता के इस प्रकार जल जाने पर वे लोग क्या कहते होंगे। राजा इस अवसर पर पद्मावती से कहता है—

'किं वक्ष्यतीति हृदय परिशङ्कितं मे,
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा।
भाग्यैश्चलैर्महदवाप्त - गुणोपघात·,
पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः॥'

इससे स्पष्ट है कि राजा का हृदय बडो के लिए इतना आदरपूर्ण है। व्यवहार और शिष्टाचार के अतिरिक्त राजा नीति और धर्म को भी जानता है। आवन्तिका को लौटाने के समय साक्षियो की नियुक्ति, उसकी राज-कार्यों में निपुणता सिद्ध करती है और यौगन्धरायण के अन्तिम शब्द 'राजधर्मस्य देशिक' उसके बिलकुल अनुरूप ही है।

वासवदत्ता

वासवदत्ता नाटक की नायिका है। यह राजा उदयन की प्रथम महिषी तथा अवन्तिराज प्रद्योत की कन्या है। कवि ने एक [illegible]

के रूप में इसका बडा सुन्दर चित्रण किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वासवदत्ता द्वारा भारतीय नारी का आदर्श चरित्र उपस्थित किया गया है। त्याग और पतिप्रेम का ऐसा अनुपम उदाहरण किसी भी साहित्य में नही मिलता। यौगन्धरायण के कथनानुसार वह राजकीय सुखो को त्याग कर अपने-आपको अनेक सकटो में डाल देती है। राजा की भलाई ही उसका एकमात्र लक्ष्य है।

वह बडी मानिनी स्त्री है। सकट सहन करने से जरा भी नही घबराती परन्तु अपमान नही सह सकती। तपोवन में सिपाहियो के अनुचित व्यवहार को देखकर उसका कोमल हृदय हाहाकार करने लगता है। वह इन पीडा को मन में दबा नही सकती और यौगन्धरायण को कहती है—

'आर्य, तथा परिश्रम परिखेदं नोत्पादयति यथाय परिभव ।'

जिस कठिन परीक्षा में वासवदत्ता अपने-आपको डालती है, वह एक स्त्री के लिए सबसे बडी परीक्षा है। कोई भी आर्य-ललना स्वप्न में भी यह सहन नही कर सकती कि उसका पति किसी दूसरी स्त्री से विवाह करे। परन्तु परिस्थितिवश अपने स्वामी की भलाई के लिए, वह अपने हृदय पर पत्थर रख कर सब कुछ होने देती है। यद्यपि विवाह का दृश्य उसके लिए असह्य हो उठता है और वह मन को स्वस्थ करने के लिए प्रमदवन में चली जाती है परन्तु यह सब कुछ थोडे समय के लिए होता है और उसका मन फिर पहले की तरह शान्त हो जाता है।

अपने अज्ञातवास में उसे सदा सतर्क एव सावधान रहना पडता है। वह पद-पद पर सोचती रहती है कि कही यौगन्धरायण की सारी योजना धूल में न मिल जाय। उसके भय और आशङ्का से पूर्ण हृदय को यदि कोई विचार सान्त्वना दे सकता है, तो वह केवल राजा का प्रेम है। विवाह कर लेने पर भी राजा उसे प्रेम करता है, यह बात उसके लिए साधारण नही। राजा के मुख से यह बात सुनकर तो वह पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाती है और सारे कष्टो को भूल जाती है। वह कहती है—

'भवतु, भवतु । दत्त वेतनमस्य परिखेदस्य । अहा अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते ।'

पद्मावती उसकी सपत्नी है परन्तु वह उससे वहिनो की तरह प्रेम करती है। पद्मावती की शिर-पीडा के विषय में सुनते ही वह अधीर हो उठती है और तत्काल उसके पास चली जाती है, उसी शय्या पर वैठती है। उसके मन में कभी भी पद्मावती के लिए विकार पैदा नही होता। अन्त में जब सारा भेद खुलता है तो पद्मावती वासवदत्ता से क्षमा-याचना करती है कि कही अनजाने उससे कोई अपराध न हो गया हो। इस पर वासवदत्ता सब उत्तरदायित्व अपने पर ही ले लेती है और प्रेमपूर्वक उत्तर देती है—

'अविधवे ! उत्तिष्ठ अर्थयिस्वं नाम शरीरमपराध्यति ।'

पतिभक्ति, धैर्य, उदारता और त्याग आदि गुणो में पूर्ण होने के कारण ही वह राजा के हृदय पर अपना विशेष अधिकार रखती है। यही कारण है कि राजा स्वप्नावस्था में भी उसी को देखता है। वह उसे कभी भूल नही सकता। उसे यहाँ तक विश्वास है कि वह दूसरे जन्म में भी उसकी स्मृति को हृदय से नही निकाल सकेगा। जैसा कि राजा की उक्ति से स्पष्ट है—

'कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ।'

वासवदत्ता के सम्बन्ध में राजा की यह उक्ति उसे सब की दृष्टि में ऊँचा उठा देती है।

पद्मावती

पद्मावती मगधराज दर्शक की भगिनी है। इसे नाटक की दूसरी नायिका कहा जा सकता है। वह अनुपम सुन्दरी है। उसके गुण और व्यवहार भी हृदय को लुभाने वाले हैं। वासवदत्ता पद्मावती को प्रथम वार देखते ही प्रभावित हुए विना नही रहती। उसके मुख से अनायास ही ये वचन निकल जाते हैं—

'न हि रूपमेव वागपि खल्वस्या मधुरा ।'

उसके सद्व्यवहार और प्रेमपूर्ण हृदय का परिचय प्रथमाङ्क के आरंभ

में ही मिल जाता है जब वह प्रथम भेंट में ही वासवदत्ता को अपनी कहने लगती है। उसके शब्द कितने हृदय को छूने वाले हैं—

'भवतु भवतु। आर्या आत्मीयेदानीं संवृत्ता।'

जहाँ उसका रूप और व्यवहार प्रशंसनीय है, वहाँ उसकी धार्मिक श्रद्धा और उदारता भी वैसी ही है। तपोवन में यौगन्धरायण को याचक के रूप में देख कर उसे भारी प्रसन्नता होती है और वह अपने-आपको धन्य समझती हुई इस प्रकार कहती है—

'दिष्ट्या सफलं मे तपोवनाभिगमनम्।'

वह अपने वचनों पर दृढ रहने वाली नारी है। जब कञ्चुकी यौगन्धरायण की भगिनी को धरोहर के रूप में रखने से आनाकानी करता है और कहता है, 'दु:खं न्यासस्य रक्षणम्' तो उस समय पद्मावती उससे सहमत नही होती। वह एक बार वचन देकर कभी पीछे हटना नही चाहती।

वह एक शुद्ध हृदय वाली स्त्री है। ईर्ष्या और अभिमान उससे कोसों दूर हैं। अपने कानो से राजा के मुख से यह सुन कर कि वासवदत्ता उसे अधिक प्रिय है, वह जरा भी उदास नही होती। यहाँ तक ही नही, वह राजा के प्रति अधिक आकृष्ट होने लगती है। चेटी राजा के ऐसे विचारों को सुनकर उससे घृणा करने लगती है परन्तु उसे उत्तर में पद्मावती से एक मधुर भर्त्सना मिलती है—

'हला! मा मैवम्। सदाक्षिण्य एवार्यपुत्र, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति।'

राजा के विदूषक से पूछने पर कि वासवदत्ता और पद्मावती में कौन अधिक गुणवती है, विदूषक पद्मावती की प्रशंसा करते हुए कहता है—

'तत्रभवती पद्मावती तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहङ्कारा, मधुरवाक्, सदाक्षिण्या। अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति।'

विदूषक थोडे समय में ही पद्मावती के गुणो को जान जाता है। वासवदत्ता से तुलना करने में, सम्भव है, उसने अत्युक्ति से काम लिया है परन्तु

जहाँ तक उसके गुणो के उल्लेख का सम्बन्ध है, उसमें लेशमात्र भी सन्देह नही हो सकता।

वासवदत्ता के प्रति भी उसका व्यवहार स्नेहपूर्ण है। वह उसको सखियो की तरह मानती है और परिहास तक भी करती है। उसने कभी वासवदत्ता को कष्ट नही होने दिया। अन्त में भेद खुलने पर कि वासवदत्ता ही आवन्तिका है, पद्मावती घबरा जाती है। वह वासवदत्ता से क्षमा माँगती है कि कही अज्ञान में उससे कोई अपराध न हो गया हो। यह उसके चरित्र की सबसे बडी विशेषता है, जिसके लिए उसकी जितनी भी प्रशसा की जाय, थोडी है।

यौगन्धरायण

यौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्त नाटक का एक असाधारण पात्र है। इसे यदि केन्द्र पात्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी। नाटक में इसके दर्शन केवल प्रथम तथा अन्तिम अङ्क में ही होते हैं परन्तु पर्दे के पीछे रहते हुए भी सभी कार्यों को चलाने वाला यही व्यक्ति है। यह स्वामिभक्त मन्त्री है और राजा की विपत्ति को अपनी विपत्ति समझता है। स्वामी के कल्याण के लिए कठिन-से-कठिन कार्य करने को तत्पर हो जाता है। उसके बुद्धिबल और चातुर्य को देखकर विस्मय होता है। वह किस प्रकार सावधानी से वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर रखता है। वह भविष्य में होने वाली घटनाओ को पहले ही सोच लेता है और उनके अनुसार आचरण करता है। वह जानता है कि पद्मावती के पास ही वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखना उचित है। यही उसकी दूरदर्शिता है। उसके निम्नाङ्कित शब्द उसकी अपूर्व बुद्धि का परिचय देते हैं :—

'तत प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति।'

वह प्रत्येक कार्य को इस ढग से आरम्भ करता है कि उसमें असफल होने की सम्भावना ही नही होती। उसकी नीति इतनी गम्भीर है कि किसी को अन्त तक भी सन्देह नही होता कि वासवदत्ता और वह जीवित

हैं। यह सब उसकी बुद्धि का प्रताप है कि राजा नष्ट हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लेता है। राजा स्वयं षष्ठाङ्क में उसका धन्यवाद करता है—

'यौगन्धरायणो भवान् ननु।
मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः।'

यौगन्धरायण की स्वामिभक्ति पराकाष्ठा को पहुँच जाती है, जब वह सम्पूर्ण कार्य में सफल हो जाने पर भी मन में डरता है कि स्वामी उसके विषय में क्या कहेंगे। उसे अपनी सफलता पर थोड़ा-सा भी अभिमान उत्पन्न नही होता। वह कहता है—

'सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे।'

राजनीति को समझने वाले एक उत्तम मन्त्री में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सब यौगन्धरायण में विद्यमान हैं। वह सम्पत्ति और विपत्ति में एक समान रहने वाला है, शास्त्रो और विद्वानो पर श्रद्धा रखने वाला है। सिद्धो के वाक्यो में भी उसकी पूरी आस्था है और उसी के अनुसार कार्य करता है। निस्संदेह वह इस नाटक का प्राण है।

विदूषक

स्वप्नवासवदत्त के विदूषक का नाम वसन्तक है। इसका स्वभाव भी प्रायः दूसरे विदूषको से मिलता-जुलता है। संस्कृत-नाटको के विदूषक अधिकतर भोजनप्रिय होते हैं। हमारा विदूषक भी इस सम्बन्ध में उनसे पीछे नही रहता वरन् किसी मात्रा तक बढ जाता है। प्रायः भोजन की मात्रा का उल्लंघन करने के कारण उसकी पाचनशक्ति क्षीण हो गई है परन्तु फिर भी वह भोजन के स्वप्न देखता है। उसका मन तो भोजन के लिए तडपता है परन्तु विवश है, क्या करे! जब चेटी राजा के लिए अङ्गराग लाने के लिए पूछती है तो विदूषक कहता है—

'सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम् ।'

भोजन की चिन्ता प्राय उसके सिर पर सवार रहती है । भोजन के कारण ही उसे भयानक रोग घेरने वाला है । उसे जीवन दु खमय प्रतीत होता है । वह कहता है—

"एक. खलु महान् दोष , ममाहार सुष्ठु न परिणमति । सुप्रच्छदनाया शय्याया निद्रा न लभे, यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्यामि । भो. ! सुख नामयपरिभूतमकल्यवर्त च ।"

हमारे विदूषक में एक बडी भारी विशेषता है । वह अन्य विदूषको की तरह सदा हंसी-मजाक में व्यस्त नही रहता । उसका अपना एक विशेष व्यक्तित्व है । वह गम्भीर, चतुर और समय के अनुसार कार्य करने वाला मनुष्य है । जब राजा वासवदत्ता के वियोग में आंसू बहाता है और अकस्मात् वहाँ पद्मावती आ जाती है, तो आंसुओ के कारण को छिपाने के लिए विदूषक चालाकी से उसे टालना चाहता है और कहता है कि राजा की आंखो में काश-कुसुम की पराग पडी है और इस कारण नेत्रो से नीर वह रहा है । पद्मावती विदूषक की चालाकी समझ लेती है और मन में कहती है—

'अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति ।'

वह विरह से व्याकुल राजा को सदा धैर्य बंधाता रहता है और राजा का परम हितैषी है । राजा को भी उस पर पूर्ण विश्वास है । इसी लिए राजा मन की गुप्त-से-गुप्त बात जैसे—'वासवदत्तावद्ध न तु तावन्मे मनो हरति' भी उसको कह देता है । विदूषक भी राजा का परम-भक्त है और उसका भेद खुलने नही देता । लता-निकुञ्ज से बाहर आई हुई, पद्मावती राजा से शायद कुछ पूछताछ करे जिसमे उसकी स्थिति सकटमय हो जाय, इस डर से विदूषक बहाना करके राजा से कहता है कि मगधराज आपको बुलाते हैं । उन्होंने आपको साथ लेकर अपने सम्बन्धियो से मिलना है । इस तरह राजा का भेद खुलने नही

देता। साधारण स्थिति के विदूषको से वह प्रतिभावान् और सम्य दिखाई देता है।

स्वप्नवासवदत्त की समालोचना—

स्वप्नवासवदत्त भास की सब से उत्कृष्ट कृति है। भाषा, भाव, शैली तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इसका नाट्य-साहित्य में बडा आदर है। नाटक की घटनाएँ सरस तथा स्वाभाविक हैं। बनावट की उनमें लेशमात्र भी गन्ध नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार ने सरलता पर विशेष ध्यान दिया है। लम्बे समास तथा अप्रसिद्ध अलकारों का समावेश नाटक में प्राय बहुत कम है। उपमा और उत्प्रेक्षा का ही अधिकतर प्रयोग किया गया है। भास कालिदास की तरह कल्पना-प्रधान कवि नही है। उसने घटनाओ को ऐसे ढग से उपस्थित किया है, जिससे उनके वास्तविक रूप में कोई अन्तर नहीं पडता। इसी कारण नाटक जीवन के अधिक समीप दिखाई देता है। नाट्यकला की दृष्टि से भी भास की प्रतिभा प्रशसनीय है। राजा की वियोग-अवस्था का वर्णन करने के लिए प्रथमाक में नाटककार ने जो ब्रह्मचारी की सृष्टि की है, यह उसकी नाट्य-कुशलता का एक प्रबल प्रमाण है। नाटक में घटना-चक्र के साथ-साथ राजा का वियोगानुभव चरमसीमा की ओर बढता है। पञ्चमाक में राजा वासवदत्ता के स्वप्न में दर्शन करता है, जिससे उसकी अवस्था उत्तरोत्तर बिगडने लगती है। यहाँ तक कि षष्ठाक में घोषवती वीणा के मिलने से तो विरहाग्नि पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। यहाँ कथा चरमसीमा तक पहुँच जाती है।

चरित्र-चित्रण में भी नाटककार सिद्धहस्त है। नायक उदयन एक सच्चा प्रेमी है, जो मृता वासवदत्ता से भी वैसा ही प्रेम करता है। वासवदत्ता का चरित्र भी अद्वितीय है। पति के कल्याण के लिए उसका त्याग महत्त्वपूर्ण है। पद्मावती जैसी उदार नारी भी आर्य-जाति का शृङ्गार है। सारे चरित्र अपनी भिन्न-भिन्न विशेषताएँ रखते हैं। नाटक मे विप्रलम्भ शृङ्गार रस प्रधान है।

भास के नाटकों की एक और मुख्य विशेषता है। ये नाटक रगमच के अनुकूल हैं। सस्कृत के नाटक प्राय. अभिनय की दृष्टि से पूरे नही उतरते। नाटककार भास निस्सदेह इसका अपवाद है। स्वप्नवासवदत्त नाटक तो आजकल भी कई स्थानो पर खेला गया है। भास के नाटको के अभिनय की सफलता का रहस्य इनके सवादों पर है। सवाद नाटक के प्राण होते हैं। भास के सवाद सक्षिप्त चुस्त तथा प्रभावोत्पादक हैं। इन्हीं के कारण ये नाटक कोरे साहित्यिक न होकर मंच की सम्पत्ति वन गये हैं।

वहुत-सी विशेषताएं रखते हुए भी नाटक में कुछेक दोप आ गये हैं। इसमें सन्देह नही कि भास की सरल एव सक्षिप्त शैली अवश्य ही सराहने योग्य है, परन्तु कई स्थानो पर जहाँ वढा-चढा कर वर्णन आवश्यक था, वहुत सकोच से काम लिया गया है। कवि की वर्णन-शक्ति कालिदास तथा भवभूति के समान वलवती नही है। यह थोडे में ही सतुष्ट रहता है और ऊचा उडना नही चाहता। ऐसा प्रतीत होता है जैसे नाटककार के पाँव पृथ्वी से वँधे हुए हैं, वह आकाश-कुसुम देखता तो है पर उन तक पहुँचने की चेष्टा नही करता। इस नाटक में एक दोप और है। भास ने कही-कही अप्रचलित शब्दो का प्रयोग किया है। इससे प्राय अर्थ में कठिनाई उत्पन्न हो गई है। परन्तु ऐसे प्रयोग अधिक नही हैं। इस सम्वन्ध में 'सविज्ञात-मस्य दर्शनम्, व्यपाश्रयरा, अभ्यवपत्तुकामः (प्रथ०) आर्यिस्वं नाम शरीरमपराध्यति (षष्ठ०) इत्यादि उल्लेखनीय हैं। परन्तु यह सव महाकवि भास के गुण-समूह में आटे में नमक के समान है। राजशेखर ने भास के विषय में सर्वथा उपयुक्त ही कहा है—

> 'भासनाटक-चक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
> स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥'

प्रस्तुत नाटक का आधार—

भास का स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण दोनो एक ही मुख्य उद्देश्य अर्थात् उदयन-कथा को लेकर लिखे गये थे। अधिकाश विद्वानो का विचार है कि इन दोनो की कथावस्तु का आधार गुणाढय की वृहत्कथा

है। बृहत्कथा पैशाची भाषा में ईसा की दूसरी शताब्दी में लिखी गई थी। परन्तु यह पुस्तक आजकल उपलब्ध नही। हमें इस पुस्तक की सामग्री, बुद्धस्वामी के बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी और सोमदेव के कथासरित्सागर से प्राप्त होती है। सोमदेव ने तो स्वय माना है कि उसकी कृति गुणाढ्य की बृहत्कथा का सार है। वैसे भी स्वप्नवासवदत्त की कथा का सबसे अधिक साम्य कथासरित्सागर से है। इसमें सदेह नही कि इन दोनो में अन्तर अवश्य है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भास ने नाटक के लिए अनुकूल वातावरण लाने के लिए मूल कथा में इच्छानुसार थोड़े बहुत परिवर्तन कर दिये हो। नाटककार प्राय. पुरानी कथाओ को कुछ-न-कुछ नवीन रूप अवश्य देते हैं। इसीमें उनकी मौलिक उद्भावना का रहस्य निहित होता है। यहाँ पर कथासरित्सागर और स्वप्नवासवदत्त की कथा के अन्तर की मुख्य बातें लिखी जाती हैं .—

(१) भास के अनुसार मगध का राजा दर्शक है, परन्तु कथासरित्सागर में उसका नाम प्रद्योत मिलता है।

(२) स्वप्नवासवदत्त में पद्मावती मगधराज की बहिन है, परन्तु कथासरित्सागर में कन्या है।

(३) भास ने वासवदत्ता को यौगन्धरायण की कृत्रिम बहिन बनाया है, परन्तु वहाँ यह यौगन्धरायण की कन्या है।

(४) स्वप्नवासवदत्त में यौगन्धरायण ने नष्ट राज्य को पुन. प्राप्त करने के लिए सब कुछ किया है। कथासरित्सागर में यह बात नही है। वहाँ पर राज्य को विस्तृत करने की इच्छा से सारा स्वाँग रचा गया है।

उपर्युक्त कथा-भेद इतना अधिक नही है और इसी कारण अधिकाश विद्वानो का मत है कि स्वप्नवासवदत्त की कथा का आधार, सम्भव है, गुणाढ्य की बृहत्कथा हो। इसी साम्य पर जोर देते हुए विद्वान्, इसी कारण भास को गुणाढ्य का समकालीन अथवा थोड़े समय बाद हुआ, ठहराते हैं।

इसके अतिरिक्त हमारे सामने और कोई प्रमाण नही जिसके बल पर स्वप्नवासवदत्त का आधार बृहत्कथा सिद्ध किया जा सके। कोई अन्य विशेष प्रमाण न होने के कारण ही कुछ विद्वान् बृहत्कथा को भास की कथा का स्रोत मानने में आपत्ति करते हैं। उनका विचार है कि भारतवर्ष में उदयन की कथा बडी लोकप्रिय थी, इसलिए सम्भव है भास ने इस प्रचलित दन्तकथा को नाटकीय रूप दिया हो। महाकवि कालिदास के कथन[1] से भी कि उदयन की कथा का बहुत प्रचार था, इस विचार की पुष्टि में सहायता मिलती है। जब और किसी प्रबल प्रमाण का अभाव हो तब इसी पर विश्वास करने के अतिरिक्त और क्या उपाय हो सकता है! इससे सम्भव है कि उदयन-कथा को लोकरुचि का केन्द्र समझते हुए, भास ने इसे अपने नाटक का विषय बनाया हो। अत अनुमान किया जा सकता है कि इस नाटक का आधार, उस समय में प्रचलित उदयन-कथा थी।

कुछेक आलोचको का विचार है कि स्वप्नवासवदत्त के रचयिता भास, नाटकीय कथा के लिए बौद्ध तथा जैन गाथाओं के ऋणी हैं। परन्तु यह कदापि सम्भव नही हो सकता। ये गाथाएँ बहुत अर्वाचीन हैं। प्रत्येक अवस्था में इन गाथाओ का काल चौथी शताब्दी ईसा के बाद बैठता है। स्वप्नवासवदत्त की रचना इससे बहुत पहले हो चुकी थी। अत. यह विचार सर्वथा असङ्गत है।

इसलिए सामग्री के अभाव में, दन्त-कथाएँ ही भास-कथा की नाटकीय सामग्री बनी होगी, यही विचार अधिक उचित दिखाई देता है।

---

१. प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्।—मेघदूत

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

उदयन—वत्स देश का राजा, नाटक का नायक ।

विदूषक—वसन्तक नाम वाला उदयन का परम मित्र ।

यौगन्धरायण—उदयन का परम स्वामिभक्त मन्त्री ।

ब्रह्मचारी—लावाणक में पढने वाला एक विद्यार्थी ।

कञ्चुकी—अन्त पुर का वृद्ध सेवक ।

सूत्रधार—रगमञ्च का प्रबन्धकर्ता ।

सम्भषक, भट—पद्मावती के नौकर ।

स्त्री-पात्र

वासवदत्ता—प्रद्योत और अङ्गारवती की पुत्री, उदयन की पटरानी
नाटक की नायिका ।

पद्मावती—मगधराज दर्शक की बहिन और उदयन की दूसरी रानी ।

तापसी—कोई आश्रमवासिनी स्त्री ।

चेटी—पद्मावती की नौकरानी ।

पद्मनिका, मधुकरिका—पद्मावती की नौकरानियाँ ।

धात्री—पद्मावती की धाय ।

विजया—उदयन की द्वारपालिका ।

धात्री—वसुन्धरा नाम वाली वासवदत्ता की धाय ।

नाटक से सम्बन्धित अन्य पात्र

पुरुष-पात्र

प्रद्योत—उज्जयिनी का प्रतापी राजा, वासवदत्ता का पिता।

दर्शक—मगध का राजा, पद्मावती का भाई।

रुमण्वान्—उदयन का स्वामिभक्त मन्त्री तथा सेनापति।

आरुणि—उदयन का शत्रु।

गोपालक—प्रद्योत का पुत्र, वासवदत्ता का भाई।

पालक—प्रद्योत का पुत्र, वासवदत्ता का भाई।

पुष्पक—सिद्ध, भविष्य-वक्ता।

भद्रक—सिद्ध, भविष्य-वक्ता।

स्त्री-पात्र

महादेवी—मगधराज की माता, आश्रम में निवास करने वाली।

अङ्गारवती—वासवदत्ता की माता, प्रद्योत की पटरानी।

अवन्तिसुन्दरी—कोई यक्षिणी।

विरचिका—उदयन की एक दासी।

स्वप्नवासवदत्तम्

[नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः]

सूत्रधारः—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्तावलौ वलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥१॥

अन्वय—उदयनवेन्दुसवर्णौ आसवदत्तावलौ पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ वलस्य भुजौ त्वा पाताम् ।

पदार्थ—नवेन्दु =नया चन्द्रमा । आसव=सुरा । पद्मा=शोभा । पूर्णौ=भरे हुए । वसन्तकम्रौ=वसन्त के समान मनोहर । वलस्य=वलदेव की (कृष्ण के वडे भाई का नाम वलदेव है) । पाताम् =रक्षा करे ।

आसवदत्तावलौ से दो प्रकार का अर्थ निकलता है। जैसे 'आसव+दत्त+आ+वलौ' अर्थात् सुरा (शराव) द्वारा सव ओर से जिन मे वल आ गया है । दूसरा अर्थ 'आसवदत्त+अवलौ' अर्थात् सुरा के कारण जो वलरहित हो गई हैं। इन दोनो अर्थों में पहला अर्थ अधिक उचित दिखाई देता है। वलदेव की भुजाओ मे वल का अभाव होना असम्भव है और दूसरे वलरहित भुजाओ से रक्षा की आशा भी कैसे की जा सकती है। इसलिए वलयुक्त कहना ही समीचीन है। वलदेव के सुराप्रेम का वर्णन सस्कृत-साहित्य मे यत्र-तत्र मिलता है। कालिदास ने अपने मेघदूत मे वलदेव की इस कमज़ोरी की चर्चा की है। कालिदास के अनुसार तो वलराम अपनी पत्नी रेवती को पास विठा कर शराव पिया करते थे।[1]

---

१ हित्वा हालामभिमतरसा रेवतीलोचनाङ्काम् ।—मेघदूत ।

महाकवि भास स्वप्नवासवदत्त नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मङ्गलाचरण[1] के उपरान्त सूत्रधार[2] से नाटक का आरम्भ करते है। यह भास मे ही विशेषता है, जिसके कारण इसके नाटक, जो काल के सन्देह रूपी भँवर में फँस चुके थे, अपने वास्तविक रचयिता से अलग नही हो सके। वाणभट्ट के हर्षचरित[3] मे भास की इस विशेषता का वर्णन वडे रोचक ढग से किया हुआ मिलता है। इस श्लोक मे नाटककार ने श्लेष द्वारा रचना-चातुरी का वडा सुन्दर परिचय दिया है। एक ही पद्य मे नाटक के प्रसिद्ध पात्रो उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक को लाकर खडा कर दिया है। अलङ्कारशास्त्र मे ऐसी रचना मुद्रालङ्कार कहलाती है।

इस पद्य से और भी पता चलता है कि भास के समय मे श्रीकृष्ण की तरह वलदेव की पूजा भी होती थी। सस्कृत-साहित्य मे अन्य स्थानो पर भी इस वात की पुष्टि के लिए उपयुक्त चिह्न मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शनै-शनै वलदेव-पूजा का प्रचार मिटता गया और श्रीकृष्ण-पूजा अधिक लोकप्रिय होती गई।

व्याकरण—उदयनवेन्दु (७ तत्पु० समा०)। आसवेन दत्तम् इति आसवदत्तम्, आ (समन्तात्) वलम् इति आवलम्, पक्षान्तरे

---

१ इस श्लोक का प्रयोजन निस्सदेह नान्दी के समान है, परन्तु नाटककार ने इसे नान्दी नही माना।

२ प्रवन्धकर्ता तथा दिग्दर्शक (Stage Manager) सूत्रधार कहलाता है, जो सव पात्रो को इच्छानुसार चलाता है।

३ सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्वहुभूमिकैः ।
सपताको यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

अथ प्रथमोऽङ्कः

[प्रविश्य]

भटौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह ।
उत्सरत उत्सरत आर्या ! उत्सरत ।

[ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो यौगन्धरायण
आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च]

यौगन्धरायणः—[कर्णं दत्त्वा] कथमिहाप्युत्सार्यते । कुतः,
धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो ! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥३॥

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उस्सारेदि ।
आर्य ! क एष उत्सारयति ।

यौगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

वासवदत्ता—अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि णाम उस्सारइदव्वा होमि त्ति ।
आर्य ! न ह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।

यौगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ।

अन्वय —धीरस्य, आश्रमसंश्रितस्य, वन्यैः फलैः तुष्टस्य वसतः, मानार्हस्य वल्कलवतः जनस्य त्रासः कुतः समुत्पाद्यते । भो उत्सिक्त, चलैः भाग्यैः विस्मितः विनयादपेतपुरुषः अयं कः, यः इदम् निभृतम् तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति ?

पदार्थ—प्रविश्य=रङ्गमञ्च पर आकर। **भटौ**=दो रक्षक, दो सिपाही। **परिव्राजकवेष** =संन्यासी का वेप धारण किये हुए (परित्यज्य सर्वं व्रजतीति परिव्राजक) । **यौगन्धरायण** =युगन्धर गोत्रापत्य पौत्रादि, उदयन के प्रधानमन्त्री का नाम। **आवन्तिकावेषधारिणी**=अवन्ति नाम के देश मे रहने वाली स्त्रि। सदृश वेपवाली। **वासवदत्ता**=राजा उदयन की रानी। **आश्रमसश्रितस्य**=जिसने आश्रम का आश्रय लिया हो, अर्थात् आश्रमवासी। **वन्यै फलै.**=वन के फलो से (कन्दमूलादि)। **मानार्हस्य**=मान के योग्य। **वल्कलवत'**=वृक्षो की छाल धारण करने वाला। **उत्पाद्यते**=उत्पन्न किया जाता है। **उत्सिक्त'**=अभिमानयुक्त। **विनयादपेतपुरुष** =विनय से रहित मनुष्य (जिसे आचार तथा कर्तव्या-कर्तव्य का ज्ञान न हो)। **निभृत**=शान्त। **ग्रामीकरोति**=ग्राम बना रहा है (ग्राम मे ऐसा व्यवहार कोलाहल शान्त करने के लिए प्राय. किया जाता है, तपोवन मे नही)।

व्याकरण—उत्सिक्त =उत्+सिच्+क्त । विस्मित =वि+स्मि+क्त । विनयादपेतपुरुष =विनयात् अपेता इति विनयाद-पेता (पञ्च० तत्पु० अलुक्) तादृशा पुरुषा यस्य (बहुव्री०)। ग्रामीकरोति=अग्राम ग्राम करोतीति, ग्रामीकरोति। ग्राम+च्वि +कृ। 'ग्रामी' यह च्वि-प्रत्ययान्त तद्धित प्रयोग है और अव्यय है। कृ के साथ इसका समास नही है। वक्तुकामा=वक्तु काम. यस्या सा वक्तुकामा। दैवतानि=देव एव इति, देव+तल् (स्वार्थे)+टाप् (स्त्रियाम्)=देवता। देवता एव दैवतम् इति। प्रज्ञादिगण मे पाठ होने से स्वार्थ मे अण्। 'दैवत' शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुसकलिङ्ग मे साधु है। पर पुंल्लिङ्ग मे इसका प्रयोग कविसम्प्रदाय मे अप्रसिद्ध है।

अहमपि नाम=नाम का प्रयोग जोर देने के लिए किया गया है। वासवदत्ता पूछना चाहती है कि क्या वह भी, जिस प्रकार अन्य साधारण लोग निकाले जा रहे है, निकाली जायगी।

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि, जह अअ परिभवो ।

आर्य ! तथा परिश्रम परिखेद नोत्पादयति, यथाय परिभव ।

यौगन्धरायणः—भुक्तोज्झित एष विषयोऽत्रभवत्या । नात्र चिन्ता कार्या । कुतः,

पदार्थ—परिश्रम =(चलने के कारण उत्पन्न हुई) थकावट । परिभव =(निकाले जाने से उत्पन्न) अपमान । भुक्तोज्झित =भोग कर छोडा हुआ ।

व्याकरण—भुक्तोज्झित =पूर्वं भुक्त पश्चात् उज्झित (कर्मधारय) ।

पूर्वं त्वयाप्यभिमत गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्य गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥४॥

भटौ—उस्सरह अय्या ! उस्सरह ।

उत्सरत आर्या ! उत्सरत ।

अन्वय —पूर्वं त्वया अपि एवम् अभिमत गतम् आसीत् । पुन भर्तु. विजयेन श्लाघ्य गमिष्यसि । कालक्रमेण परिवर्तमाना जगत भाग्यपङ्क्ति चक्रारपङ्क्ति इव गच्छति ।

पदार्थ—अभिमतम्=पसन्द, इष्ट । श्लाघ्यम्=प्रशसा के योग्य । चक्रारपङ्क्ति =पहिये के अरो (दण्डो) की पक्ति (Spokes of a Wheel) । परिवर्तमाना=घूमती हुई ।

व्याकरण—अभिमतम्=यह क्रियाविशेषण है । गमन क्रिया को विशिष्ट करता है । अभि+मन् ।

'पूर्व त्वयाप्यभिमत गतमेवमासीत्' का अर्थ अधिक स्पष्ट दिखाई नही देता। कुछेक टीकाकारो ने इसका अर्थ 'पहले तुम्हे भी यह इष्टार्थ प्राप्त था' ऐसा किया है। परन्तु वाग्-व्यवहार के विरुद्ध होने से मान्य नही। 'तुम्हारा चलना भी इसी प्रकार तुम्हे पसन्द था' उपयुक्त है। इस वर्णन मे यौगन्धरायण ने एक तथ्य का वर्णन किया है। इससे वासवदत्ता के चरित्र पर कोई विशेष आक्षेप नही आता। अन्य टीकाकारो ने 'गत' का अर्थ 'प्राप्त' मान कर ऐसी कल्पना की है। पर इस प्राप्त अर्थ की व्यर्थता 'मया गतोऽर्थ' ऐसे बेढगे प्रयोग से स्पष्ट हो जाती है। उपर्युक्त भाव की छाया कालिदास के मेघदूत की निम्नाङ्कित दो पक्तियो मे कितने सुन्दर ढग से उतारी गई है—

कस्यात्यन्त सुखमुपनत दु खमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥

ऐसा ही भाव हितोपदेश मे भी मिलता है—

चक्रवत् परिवर्तन्ते दु खानि च सुखानि च।

[तत प्रविशति काञ्चुकीय]

काञ्चुकीयः—सम्भपक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या।

पश्य—

कञ्चुकी=अन्त पुर मे रहने वाले वृद्ध ब्राह्मण को कञ्चुकी कहा जाता है। कञ्चुकी का लक्षण—

अन्त पुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वित।
सर्वकार्यार्थ - कुशल कञ्चुकीत्यभिधीयते॥
ये नित्य सत्यसम्पन्ना कामदोषविवर्जिता।
ज्ञानविज्ञानकुशला काञ्चुकीयास्तु ते स्मृता॥

कञ्चुकी और काञ्चुकीय मे कोई भेद नही। कञ्चुक लम्बे चोगे को कहते है।

व्याकरण—कञ्चुकी=कञ्चुक अस्यास्ति इति, (कञ्चुक + इन्) कञ्चुकिन्। न खलु, न खलु='न खलु' का दो वार प्रयोग ज़ोर डालने के लिए किया गया है। सम्भपक=सिपाही का नाम है। चूंकि सिपाही प्राय उचितानुचित भापरण की परवाह नही करते, इसलिए कवि ने सम्भषक (भौकने वाला) नाम गुणानुसार रखा है।

परिहरतु भवान् नृपापवाद
न परुषमाश्रमवासिपु प्रयोज्यम्।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते
वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥५॥

उभौ—अय्य ! तह।
आर्य ! तथा।

[निष्क्रान्तौ]

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम्। वत्से! उपसर्पावस्तावदेनम्।

वासवदत्ता—अय्य ! तह।
आर्य ! तथा।

यौगन्धरायणः—[उपसृत्य] भो· ! किंकृतेयमुत्सारणा।

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

अन्वय —भवान् नृपापवाद परिहरतु, आश्रमवासिषु परुष न प्रयोज्यम्, *एते मनस्विन नगरपरिभवान् विमोक्तु वनम् अभिगम्य वसन्ति।*

पदार्थ—**नृपापवादम्**=राजा की निन्दा (लोगो को निकालने के कारण जो अपयश सम्भव होता है। **परिहरतु**=परे हटाओ (दूर करो), (क्योकि नौकरो का अपराध प्राय स्वामी के माथे ही मढा जाता है)। **परुष**=कठोर (वचन), (निकालने मे प्राय कठोर शब्द प्रयुक्त करने ही पडते हैं)। **मनस्विन** =आत्माभिमानी

(Sensitive) जिनको अणुमात्र अपमान भी असह्य होता है।
अभिगम्य=आकर।

व्याकरण—नगरपरिभवान्=नगरे सुलभा परिभवा तान्। मनस्विन =मनस्+विनि (अस्मायामेधास्रजो विनि) मनस्विन् शब्द की प्रथमा का बहुवचन। प्रशस्त मन एपामस्तीति मनस्विन। हन्त=अव्यय है। यह प्रसन्नता अथवा आश्चर्य प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होता है। सविज्ञानम्=विविच्य धर्माधर्मयोर्ज्ञान विज्ञानम्। दर्शनम्=दृश्यते वस्तु अनेनेति दर्शन बुद्धि।

'सविज्ञानमस्य दर्शनम्' भास का यह प्रयोग कुछ अखरता है। सरलता से अर्थ-प्रतीति नही होती। दर्शन के कई अर्थ हैं, परन्तु यहाँ बुद्धि ही विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है। क्योकि यौगन्धरायण ने बुद्धिवाली बात कही है। 'हन्त' का प्रयोग प्रसन्नता अथवा आश्चर्य प्रकट करने के लिए प्राय वाक्य के प्रारम्भ मे होता है। जैसा कि कहा है—'हन्त हर्षेऽनुकम्पाया वाक्यारम्भविषादयो'।

यौगन्धरायणः—[आत्मगतम्] तपस्विन्निति गुणवान खल्वयमालापः। अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि।

काञ्चुकीयः—भोः ! श्रूयताम्। एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम। सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति। तद् अद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः। तद् भवन्तः,

आत्मगतम्=दूसरे से नही कहनी, इसलिए जो बात अपने मन मे सोची जाती है, आत्मगत कहलाती है। इसे स्वगत भी कहते है। जैसे कहा है—'अश्राव्य खलु यद्वस्तु तदिह स्वगत मतम्।'

पदार्थ—**अपरिचयात्**=अनभ्यस्त होने से। ('तपस्वी' इस प्रकार का सम्बोधन सुनने का अभ्यास न होने से) यौगन्धरायण को तो मन्त्री सम्बोधन सुनने का ही अभ्यास था, 'तपस्वी' शब्द उसके लिए अपरिचित था। **न श्लिष्यते**=नही जुडता है (मुझे इससे प्रसन्नता नही होती)। **अभिहितनामधेयस्य**=जिसे (दर्शक) नाम से बुलाया जाता है। **महाराजदर्शकस्य भगिनी**=पद्मावती (दर्शक अजातशत्रु का पुत्र और बिम्बिसार का पौत्र था। **राजमाता महादेवी**=महाराज अजातशत्रु की रानी और महाराज दर्शक की माता। **राजगृह**=मगध की राजधानी। महाराज दर्शक के समय राजधानी राजगृह थी। दर्शक के बाद राजधानी पाटलिपुत्र बनी। **अभिप्रेत**=इष्ट, पसन्द (Desired)।

व्याकरण—श्लिष्यते=व्याकरण-विरुद्ध है। आत्मनेपद नही होना चाहिए। श्लिष्यति व्याकरणानुसार होगा।

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥६॥

अन्वय—तपोधनानि तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् वनात् स्वैरम् उपनयन्तु। धर्मप्रिया नृपसुता तपस्विषु धर्मपीडा न हि इच्छेत्। एतद् अस्या कुलव्रतम्।

पदार्थ—**तपोधनानि**=तपस्या की सामग्री। **समिध**=हवन की लकडियाँ। **दर्भान्**=कुशाओ को। **स्वैरम्**=स्वेच्छापूर्वक अर्थात् निश्शङ्क होकर। **धर्मपीडाम्**=धर्म के कार्यों मे जो विघ्न उत्पन्न होता है, उसे। **कुलव्रतम्**=परम्परागत वशधर्म (आचार)।

व्याकरण—**स्वैरम्**=स्वेन ईर्ते=स्वैर। वृद्धि। क्रियाविशेषण होने से नपुसक लिङ्ग एकवचन मे प्रयुक्त हुआ। धर्मप्रिया=

धर्म प्रियो यस्या सा (बहुव्री०) धर्मस्य प्रिया, इति वा, षष्ठी तत्पु० । प्रियधर्मा इति वा ।

यौगन्धरायणः—[स्वगतम्] एवम् । एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति । ततः,

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते ।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥७॥

अन्वय.—प्रद्वेष इत्यादि पद्य का अन्वय सरल है ।

पदार्थ—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकै =पुष्पक और भद्रादि नाम वाले सिद्धो ने । प्रद्वेष =अधिक शत्रुता । बहुमान.=आदर । सङ्कल्पात्=मन के विचारो से । स्वता=आत्मीयता, अपनापन ।

व्याकरण—पुष्पकभद्रादिभि =पुष्पकश्च भद्रश्च आदी येषा तैं । आदेशिका =आदेशोऽस्त्येषामित्यादेशिका । इनि । प्रद्वेष =प्रकृष्टो द्वेष । भर्तृदाराभिलाषित्वात्=भर्तु दारा , इति भर्तृदारा , भर्तृदारानभिलषतीत्येव शील , स भर्तृदाराभिलाषी, तस्य भाव , तस्मात् ।

सङ्कल्प=प्राय मनुष्य के मन मे किसी वस्तु अथवा किसी व्यक्ति के विषय मे अच्छे अथवा बुरे विचार एकत्रित हो जाया करते है । इन विचारो को सङ्कल्प कहते हैं ।

इस पद्य मे कवि ने मनुष्य की मनोवैज्ञानिक स्थिति का बडा अपूर्व परिचय दिया है । जो वस्तु एक समय अच्छी नही समझी जाती, वही आवश्यकता तथा समय के अनुसार अच्छी लगने लगती है । चूंकि राजा का पद्मावती से विवाह होने पर राज्य-प्राप्ति निश्चित हो जाती है, इसीलिए यौगन्धरायण के मन मे उसके लिए श्रद्धा उमड रही है ।

वासवदत्ता—[स्वगतम्] राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ सम्पज्जइ ।

राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।

[तत प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च]

चेटी—एदु एदु भट्टिदारिआ, इदं अस्समपदं पविसदु ।

एतु एतु भर्तृदारिका, इदमाश्रमपद प्रविशतु ।

[तत प्रविशत्युपविष्टा तापसी]

तापसी—साअद राअदारिआए ।

स्वागत राजदारिकाया ।

वासवदत्ता—[स्वगतम्] इअ सा राअदारिआ । अभिजणाणुरूवं खु से रूवं ।

इय सा राजदारिका । अभिजनानुरूप खल्वस्या रूपम् ।

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । आर्ये ! वन्दे ।

तापसी—चिरं जीव । पविस जदे ! पविस । तवोवणाणि णाम अदिहिजणस्स सअगेहं ।

चिर जीव । प्रविश जाते ! प्रविश । तपोवनानि नाम अतिथिजनस्य स्वगेहम् ।

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्ये ! विस्सत्थह्मि । इमिणा वहुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि ।

भवतु भवतु । आर्ये ! विश्वस्तास्मि । अनेन वहुमानवचनेन अनुगृहीतास्मि ।

वासवदत्ता—[स्वगतम्] ण हि रूव एव्व, वाआ वि खु से महुरा ।

न हि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा ।

तापसी—भद्दे ! इम दाव भद्दमुहस्स भइणिअ कोच्चि राआ ण वरेदि ।

भद्रे ! इमा तावद् भद्रमुखस्य भगिनिका कश्चिद् राजा न वरयति ।

चेटी—अत्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जइणीए । सो दारअस्स कारणादो दूदसम्पादं करेदि ।

अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्या । स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पात करोति ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु । एसा अ अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता ।

भवतु भवतु । एषा चात्मीयेदानी सवृत्ता ।

तापसी—अर्हा खु इअ आइदी इमस्स वहुमाणस्स । उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि ।

अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य वहुमानस्य । उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते ।

पदार्थ—अभिजन=उच्चकुल । अनुरूपम्=सदृश । अतिथि= मेहमान (जिसने थोडा समय ठहरना हो) । जैमे—एकरात्र तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मण स्मृत । अनित्य हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथि-रुच्यते ।।मनु'।।

नाम=यह प्रयोग निश्चय प्रकट करने के लिए किया है (अर्थात् सव जानते हैं कि तपोवन अतिथिजनो का अपना घर है) । विश्वस्ता= सुखपूर्वक । वहुमानवचनेन=आदरयुक्त वचन से (जैसा कि 'तपोवन अतिथिजनो का अपना घर है' से स्पष्ट होता है) । भद्रमुख=सुन्दर मुख वाला । यह दर्शक के लिए प्रयुक्त हुआ है । यह शब्द निम्नश्रेणी के पात्रो द्वारा युवराज के लिए प्रयुक्त किया जाता है । साहित्यदर्पण मे लिखा है—'सौम्यभद्रमुखेत्येवमधमैस्तु कुमारक ।' प्रद्योत=अवन्ति का राजा । दूत-सम्पातम्=दूत का भेजना । आत्मीया=अपनी । वहुमानस्य=गौरव की । महत्तरे=वहुत ऊँचे ।

व्याकरण—सम्पातम्—सम् पूर्वक पत् से घञ्। आत्मीया—आत्मन इयमिति, आत्मन्+छ+टाप् (स्त्रियाम्)।

प्रद्योत बुद्ध और बिम्बिसार का समकालीन माना जाता है। इसका समय ईसा से ५०० वर्ष पूर्व कहते है।

पद्मावती—अय्य। किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं। अभिप्पेदप्पदाणेण तवस्सिजणो उवणिमन्तीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदि त्ति।

आर्य! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम्। अभिप्रेत-प्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यता तावत् क किमत्र इच्छतीति।

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेत भवत्या। भो भो आश्रमवासिनस्त-पस्विनः! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः। इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विस्रम्भेणोत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते।

पदार्थ—अभिप्रेतप्रदानेन=इच्छानुसार दान देने से। विस्रम्भेण=विश्वास से। यहाँ यह सद्व्यहार का उपलक्षक है। उत्पादित-विस्रम्भा=जिमे विश्वास उत्पन्न हो गया है।

व्याकरण—अभिप्रेतप्रदानेन—अभिप्रेतस्य प्रदानेन। हेतु मे तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है।

'विस्रम्भ' दन्त्य सकार से लिखना चाहिए। तालव्य शकार वाला 'विश्रम्भ' शब्द प्रमाद का वाचक है।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चित
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत्।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सित वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥८॥

ोगन्धरायरण:—[आत्मगतम्] हन्त ! दृष्ट उपायः। [प्रकाशम्]
भोः ! अहमर्थी।

द्मावती—दिट्ठिआ सहलं मे तवोवणाभिगमणं।

दिष्ट्या सफलं मे तपोवनाभिगमनम्।

ापसी—सतुट्ठतपस्सिजणं इदं अस्समपद। आअन्तुएण इमिणा होदव्वं।

सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम्। आगन्तुकेनानेन भवितव्यम्।

ाञ्चुकीयः—भोः! किं क्रियताम्।

ौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा। प्रोषितभर्तृकामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम्। कुतः,

अन्वय—कस्य कलशेन अर्थः। कः वासः मृगयते। (य) यथा-निश्चितम् दीक्षां पारितवान्, (स) पुनः किं इच्छति, यत् गुरोः देयम् भवेत्। धर्माभिरामप्रिया नृपजा इह आत्मानुग्रहम् इच्छति। यत् यस्य समीप्सितम् अस्ति, (स) तत् वदतु, अद्य कस्य किं दीयताम्।

पदार्थ—**देयम्** (दक्षिणा के रूप मे) देने योग्य वस्तु। **धर्माभि-रामप्रिया**=तपस्वियों मे प्रेम करने वाली। **समीप्सितम्**=इच्छित वस्तु। **हन्त**=यह अव्यय हर्ष प्रकट करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। **आगन्तुक**=बाहर का मनुष्य। **प्रोषितभर्तृका**=वह स्त्री जिसका पति परदेश गया हो।

व्याकरण—धर्माभिरामप्रिया—धर्मेऽभिरतिर्येषाम् इति धर्मा-भिरामा (बहुव्री०), तेषां प्रिया (षष्ठी तत्पु०)। समीप्सितम्=सम्+आप्+सन्+क्त (प्रथमा एकवचन)

प्रोषितभर्तृका=प्रोषितः भर्ता यस्याः सा। साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण इस प्रकार कहा है —

नानाकार्यवशाद्यस्या दूरदेश गत पति ।
सा मनोभवदुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका ॥

ऐसी स्त्री को सिर गूँथना, अलङ्कार पहनना, आँखो मे काजल लगाना तथा अन्य शृङ्गार निषिद्ध है।

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रै-
र्नाहं काषाय वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।
धीरा कन्येय दृष्टधर्मप्रचारा
शक्ता चारित्र रक्षितु मे भगिन्याः ॥६॥

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हं। इह मं णिक्खिविदुकामो अय्य-योगन्धरायणो। होदु, अविआरिअ कम ण करिस्सदि।

हम्। इह मा निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायण। भवतु, अविचार्य क्रम न करिष्यति।

काञ्चुकीय—भवति। महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा। कथं प्रतिजानीमः। कुतः,

अन्वय.—अर्थै (मम) कार्यम् न एव, भोगै अपि न, वस्त्रै न। अहं वृत्तिहेतो काषायं न प्रपन्न। धीरा दृष्टधर्मप्रचारा इयम् कन्या मे भगिन्या चारित्रम् रक्षितु समर्था।

पदार्थ—**वृत्ति**=जीविका। **काषायम्**=गेरुआ वस्त्र (जैसे कि सन्यासी धारण करते हैं)। **प्रपन्न**=प्राप्त हुआ हूँ। **दृष्टधर्मप्रचारा**= जिसमे धर्म का आचरण देखा गया है। **हम्**=विषाद प्रकट करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। **निक्षेप्तुकाम**—धरोहर रखने के लिए इच्छुक। **व्यपाश्रयणा**—प्रार्थना। **प्रतिजानीम**—हम स्वीकार करें।

व्याकरण—वृत्तिहेतो—यहाँ 'हेतु' से षष्ठी का प्रयोग हुआ है। काषायम्—कषायेण रक्त काषायम्। प्रपन्न—प्र+पद्+क्त (प्रथमा एकवचन)। दृष्टधर्मप्रचारा—दृष्ट (मया) धर्मस्य प्रचार यस्या सा (बहुव्री०)। निक्षेप्तुकाम—निक्षेप्तु काम यस्य

(वहुव्री०) । व्यपाश्रयणा—वि+अप+आ+श्रि+युच्+टाप्
(स्त्रिया वाहुलकात् भावे युच्) ।

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणा सुखं तप ।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥१०॥

पद्मावती—अय्य ! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदि त्ति अजुत्तं दाणिं विआरिदुं । जं एसो भणादि, त अणुचिट्ठदु अय्यो ।

आर्य ! प्रथममुद्घोष्य क किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेप भणति, तदनुतिष्ठत्वार्य ।

काञ्चुकीयः—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

चेटी—चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एव सच्चवादिणी ।

चिरं जीवतु भर्तृदारिकैव सत्यवादिनी ।

तापसी—चिरं जीवदु भद्दे ! । चिरं जीवतु भद्रे ! ।

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा । [उपगम्य] भोः ! अभ्युपगतमत्रभवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या ।

यौगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या । वत्से ! उपसर्पात्रभवतीम् ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] का गई । एसा गच्छामि मन्दभाआ ।

का गति । एषा गच्छामि मन्दभागा ।

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्या अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता ।

भवतु भवतु । आर्या आत्मीयेदानीं संवृत्ता ।

तापसी—जा ईदिसी से आइदी, इय वि राअदारिअत्ति तक्केमि ।

या ईदृश्यस्या आकृति, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि ।

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि ।

सुष्ठु आर्या भणति । अहमप्यनुभूतसुखेति पश्यामि ।

योगन्धरायण.—[आत्मगतम्] हन्त ! भो. ! अर्द्धमवसितं भारस्य । यथा मन्त्रिभि. सह समर्थित तथा परिणमति । तत. प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थान भविष्यति । कुत.,

अन्वय—अर्थ सुख दातु भवेत् । प्राणा सुखम्, तप सुखम् । अन्यत्सर्व सुख दातु भवेत् (पर) न्यासस्य रक्षण दु खम् ।

पदार्थ—अनुरूप=उपयुक्त,उचित । अनुगतरूपमिति । **सत्यवादिनी** =सच बोलने वाली (सत्य वदितु शीलयति) **अभ्युपगतम्**=मान लिया है । **अनुभूतसुखा**=जो जीवन का सुख प्राप्त कर चुकी है । **अवसितम्**= समाप्त हो गया है । **समर्थितम्**=निश्चय किया है । **परिणमति**=हो रहा है । **उपनयत** =पहुँचाते हुए । **विश्वास-स्थानम्**=जिसमे विश्वास हो जाय ।

व्याकरण—मन्दभागा=मन्दो भाग (भाग्य) यस्या सा । अनुभूतसुखा=अनुभूत सुख यया सा । अवसितम्=अव+सो (दिवादिगण)+क्त (प्रथमा एकवचन) ।

वासवदत्ता अपने-आपको मन्दभागिनी इसलिए कहती है कि वह अपने पति अथवा घर से बिछुड गई है और अब बचे हुए एक मात्र सहारे से भी वियुक्त हो रही है । भवतु भवतु=यह दो बार प्रयोग पद्मावती की प्रसन्नता को प्रकट करता है ।

विश्वासस्थानम्=वासवदत्ता को पद्मावती के पास इस प्रकार छोड जाने का अभिप्राय केवल उसको (पद्मावती को) विश्वासस्थान अर्थात् साक्षिणी बनाना था । कार्य सिद्ध हो जाने पर वासवदत्ता की चरित्रशुद्धि के विषय मे राजा को किसी प्रकार का सदेह होने की सभावना न हो, इसीलिए यौगन्धरायण ने इस नीति का अनुसरण किया था ।

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥११॥

[ततः प्रविशति ब्रह्मचारी]

ब्रह्मचारी—[ऊर्ध्वमवलोक्य] स्थितो मध्याह्नः। दृढमस्मि परिश्रान्तः। अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये। [परिक्रम्य] भवतु, दृष्टम्। अभितस्तपोवनेन भवितव्यम्। तथाहि—

अन्वय—पद्मावती नरपते महिषी भवित्री। यै प्रथम प्रदिष्टा विपत्ति अथ दृष्टा। तत् प्रत्ययात् इदं कृतम्। हि विधि सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि उत्क्रम्य न गच्छति।

पदार्थ—भवित्री=होगी (मुख्यार्थ=होने वाली)। यैः=जिन्होंने (सिद्धो ने)। प्रत्ययात्=विश्वास से। इदम्=यह (वासवदत्ता का धरोहर के रूप मे पद्मावती के पास रखना)। सुपरीक्षितानि=अच्छी प्रकार परीक्षा किये गये। सिद्धवाक्यानि=सिद्ध पुरुषो के वचन। उत्क्रम्य =लाँघ कर।

व्याकरण—भवित्री=भू+तृच् (स्त्रिया ङीप्)। सुपरीक्षितानि=सु+परि+ईक्ष्+क्त, सिद्धवाक्यानि का विशेषण है। उत्क्रम्य=उत्+क्रम्+ल्यप्। ब्रह्मचारी=ब्रह्म वेद चरितु शीलमस्य इति, ब्रह्म+चर्+णिनि ताच्छील्ये। मध्याह्न = मध्यमह्न। विश्रमयिष्ये=वि+श्रम्+णिच्+लृट् (उत्तम पु० एक वचन)। अभित =सन्निधौ, समीपे॥

कालिदास के कुमारसम्भव मे भी इसी प्रकार का मिलता जुलता विचार देखा जाता है—'न हीश्वरा व्याहृतय कदा-

चित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्' । भवभूति ने भी उत्तरराम-चरित मे मिलता हुआ विचार कहा है—'ऋषीणा पुनराद्याना वाचमर्थोऽनुधावति' ।।

विस्रब्ध हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपा. सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिद तपोवनमय धूमो हि वह्वाश्रयः ॥१२॥

अन्वय—देशागतप्रत्यया अचकिता हरिणा विस्रब्धम् चरन्ति । सर्वे वृक्षा दयारक्षिता पुष्पफलै समृद्धविटपा सन्ति । गोकुलधनानि भूयिष्ठ कपिलानि सन्ति । दिश अक्षेत्रवत्य । इद नि सन्दिग्ध तपोवनम् । हि अय धूम बह्वाश्रय ।

पदार्थ—**देशागतप्रत्यया** =तपोवन होने से जिन्हे विश्वास हो गया है कि हम यहाँ सुरक्षित हैं । **विस्रब्धम्**=वेखटके । **दयारक्षिता** =प्रेम मे रक्षित (जिन पर समयानुसार जलसिञ्चनादि किया जाता है) । **विटपा** =शाखाएँ । **भूयिष्ठम्**=अधिकतर । **बह्वाश्रय** =जिसके वहुत आश्रय (स्थान) हो, जो वहुत स्थानो से निकल रहा हो ।

व्याकरण—देशागतप्रत्यया =देशात् आगत प्रत्यय येषा ते देशागतप्रत्यया (बहुव्री०) (बह्वाश्रय =बहव आश्रया यस्य तथाभूत । गोकुलधनानि=गवा कुलानि एव धनानि ।

कपिला=कामधेनु सब गायो मे श्रेष्ठ मानी जाती है और उससे दूसरे दर्जे पर कपिला । क्षीरा और कृष्णा उससे भी निम्न श्रेणी की गाये होती हैं ।

हिरणो के तपोवन की भूमि मे निश्शङ्क होकर घूमने का वर्णन कालिदास की शकुन्तला मे भी मिलता है । शिकार

खेलता हुआ दुष्यन्त इसी चिह्न से पहचान लेता है कि यह तपोवन है—'विश्वासोपगमादभिन्नगतय शब्द सहन्ते मृगा ।' १, ८ ।

यावत् प्रविशामि । [प्रविश्य] अये ! आश्रमविरुद्ध खल्वेष जन । [अन्यतो विलोक्य] अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र । निर्दोषमुपसर्पणम् । अये ! स्त्रीजन ।

काञ्चुकीय —स्वैरं स्वैर प्रविशतु भवान् । सर्वजनसाधारणमाश्रमपद नाम ।

वासवदत्ता—हं !

हम् !

पद्मावती—अम्मो ! परपुरुसदंसणं परिहरदि अय्या । भोदु, सुपरिवालणीओ खु मण्णासो ।

अम्मो ! परपुरुषदर्शन परिहरत्यार्या । भवतु, सुपरिपालनीय खलु मन्न्यास ।

काञ्चुकीय —भो ! पूर्व प्रविष्टा स्म । प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कार ।

ब्रह्मचारी—[आचम्य] भवतु भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि ।

यौगन्धरायण —भोः ! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यम्, क्वाधिष्ठानमार्यस्य ?

ब्रह्मचारी—भो ! श्रूयताम् । राजगृहतोऽस्मि । श्रुतिविशेषणार्थं लावाणक नाम ग्रामस्तत्रोपितवानस्मि ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हा ! लावाणअ णाम । लावाणअसंकित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे सन्दावो ।

हा ! लावाणक नाम । लावणकसङ्कीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्ताप ।

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रह्मचारी—न खलु तावत्।

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुण व्यसन सवृत्तम्।

यौगन्धरायणः—कथमिव ?

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः। किं सः ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल।

यौगन्धरायणः—भवितव्यम्। ततस्तत ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अलिअं अलिअं खु एदं। जीवामि मन्दभाआ।

अलीकमलीक खल्वेतत्। जीवामि मन्दभागा।

यौगन्धरायणः—ततस्तत ?

पदार्थ—**आश्रमविरुद्ध** =आश्रमवास के अयोग्य। **उपसर्पणम्**=पास जाना। **हम्**=यहाँ पर सकोच तथा अरुचि प्रकट करता है। **परपुरुषदर्शनम्**=अपने पति के अतिरिक्त दूसरे पुरुष का दर्शन (प्रोपितभर्तृका परपुरुष-दर्शन नही करती)। **सुपरिपालनीय** =अच्छी तरह से पालन किये जाने योग्य। **श्रुतिविशेषणार्थम्**=वेद के विशेष (अधिक) ज्ञान के लिए। **उषितवानस्मि**=(मैं) रहता था। **अनवसित**=जिसकी समाप्ति न हुई हो।

सुपरिपालनीय.—पद्मावती समझ लेती है कि वासवदत्ता जब एक ब्रह्मचारी के सामने होने मे भी घबराती है, तो उसे बचा कर रखना होगा।

व्याकरण—सुपरिपालनीय. = सु+परि+पाल्+णिच्+अनीय। निवृत्त=नि+वृत्+क्त। परिसमाप्ता=परि+सम्+आप्+क्त+टाप्।

ब्रह्मचारी—ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिव-स्तस्मिन्नेवाग्नौ पतित ।

यौगन्धरायणः—सत्य पतित इति। ततस्तत ?

ब्रह्मचारी—तत प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोग-जनितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तु-कामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारित ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणुक्कोसत्तणं।

जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम् ।

यौगन्धरायणः—ततस्तत ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्या. शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः ।

सर्वे—हा !

वासवदत्ता—[स्वगतम्] सकामो दाणि अय्यजोअन्धराअणो होदु ।

सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु ।

चेटी—भट्टिदारिए ! रोदिदि खु इअं अय्या ।

भर्तृदारिके ! रोदिति खल्वियमार्या ।

पद्मावती—साणुक्कोसाए होदव्व ।

सानुक्रोशया भवितव्यम् ।

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम्। प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी।
ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—तत. शनैः शनै. प्रतिलब्धसंज्ञ. संवृत्तः।

पद्मावती—दिट्ठिआ धरइ। मोह गदो त्ति सुणिअ सुण्ण विअ मे हिअअं।

दिष्ट्या ध्रियते। मोह गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय "हा वासवदत्ते! हा अवन्तिराजपुत्रि! हा प्रिये! हा प्रियशिष्ये!" इति किमपि बहु प्रलपितवान्। किं बहुना,

पदार्थ—अभ्यवपत्तुकाम =बचाने (सहायता करने) की इच्छा वाला। **प्रतिनिवृत्त** =लौटा हुआ। **तयो** =उन दोनो के (वासवदत्ता और यौगन्धरायण के) **वारित** =हटाया गया। **सानुक्रोशत्वम्**= दयालुता। **शरीरोपभुक्तानि**=शरीर से भोगे गये (पहने हुए)। **दग्धशेषाणि**=जलने मे बचे हुए। **सकाम** =सफलमनोरथ। **सानुक्रोशया**=कोमलचित्तवाली। (से)। **अथ किम्**=ठीक है—हाँ। (मूल मे इसका अर्थ है और क्या=हाँ)। **प्रतिलब्धसंज्ञ** =जिसको होश आ गई हो। **ध्रियते**=जीवित है। **शून्य**=सूना। **परिसर्पण**= लोटना। **पाटल**=थोडा लाल (धूलि-धूसरित, धूल का रग)। **प्रलपितवान्**=प्रलाप किया, बोला।

व्याकरण—अभ्यवपत्तुकाम =अभि+अव+पद्+तुमुन्(तुम् के म् का लोप हो गया है)। सानुक्रोशत्वम्=अनुक्रोशेन सह वर्तमान य, तस्य भाव। शरीरोपभुक्तानि=शरीरेण उपभुक्तानि। दग्धशेषाणि=दग्धेभ्य शेषाणि। प्रतिलब्धसञ्ज्ञ= प्रतिलब्धा सञ्ज्ञा येन स। ध्रियते=धृङ् अवस्थाने, जीवति।

सकाम ='सकाम' कहने से वासवदत्ता का अभिप्राय यह है कि अब तो यौगन्धरायरण को सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। यदि हमे इस प्रकार कष्ट देना ही उसे अभिप्रेत था तो अब तो उसे पता लग गया है कि उसकी नीति से मेरे पति की क्या दशा हुई है। यहाँ तक कि वह मूर्च्छित हो गया है।

प्रियशिष्ये=राजा वासवदत्ता को 'प्रियशिष्ये' इसलिए पुकारता था, क्योकि वीणा सीखने मे वह पहले उसकी शिष्या भी रह चुकी थी।

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥१३॥

यौगन्धरायणः—अथ भोः! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः?

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम। स हि,

अन्वय—इदानी चक्रवाका तादृशा न एव। स्त्रीविशेषै वियुक्ता अन्ये अपि तादृशा न एव। सा स्त्री धन्या या भर्ता तथा वेत्ति। हि सा भर्तृस्नेहात् दग्धा अपि अदग्धा।

पदार्थ—चक्रवाका =चकवे।[चकवे के साथ तुलना इसलिए की गई है कि उसका प्रेम लोक-प्रसिद्ध है। भास का यह कथन एक शाश्वत सत्य है। प्रेमी का मरी हुई प्रेमिका को याद मे तडपना मानो प्रेमिका को जीवित रखना है। भवभूति ने मालतीमाधव मे भी नाटक की नायिका मालती ने इसी प्रकार के भाव व्यक्त कराये हैं—"हा दयित माधव! परलोकगतोऽपि स्मर्तव्यो युष्माभिरय जन। न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो-

जन स्मरति ।"] स्त्रीविशेषैर्वियुक्ता = उत्तम स्त्रियों (सीता दमयन्ती आदि) से अलग हुए । वेत्ति = समझता है (स्मरण करता है) । दग्वाप्यदग्वा = जली हुई भी जीवित है । पर्यवस्थापयितुन् = ठिकाने लगाने के लिए, तसल्ली देने के लिए । तत्रभवन्तम् = उन पूजनीय (उदयन) को ।

व्याकरण—पर्यवस्थापयितुम् = परि + अव + स्था = णिच् + तुमुन् ।

अनाहारे तुल्यः सततरुदितक्षामवदन.
शरीरे सस्कार नृपतिसमदु.ख परिवहन् ।
दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपति
नृप. प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरम. ॥१४॥

वासवदत्ता—[स्वगतम्] दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणिं अय्यउत्तो ।
दिष्ट्या सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्र ।

यौगन्धरायण·—[आत्मगतम्] अहो ! महद्भारमुद्वहति रुमण्वान् । कुतः,

अन्वय—अनाहारे तुल्य , सततरुदितक्षामवदन , नृपतिसमदु ख शरीरे संस्कार परिवहन्, दिवा वा रात्रौ वा यत्नै नरपति परिचरति । यदि नृप सद्य प्राणान् त्यजति, तस्य अपि उपरम ।

पदार्थ—अनाहारे—भूखा रहने मे । क्षामवदन —मुर्झाये हुए (कमज़ोर) मुख वाला । संस्कारम्—शारीरिक शृङ्गार गन्धमाल्यादि । परिवहन्—धारण करता हुआ, पहनना हुआ । परिचरति—सेवा करता है । उपरम —मृत्यु ।

व्याकरण—सततरुदितक्षामवदन —सतत रुदित तेन क्षाम वदन यस्य स । नृपतिसमदु खम्—नृपतिना सम दु ख यस्मिन् कर्मणि, तत् यथा स्यात् तथा । क्रियाविशेषण 'परिवहन्' क्रिया

की विशेषता प्रकट करता है। सुनिक्षिप्त =सुष्ठु निक्षिप्त। क्षिप् का अर्थ 'फेंकना' है परन्तु 'नि' उपसर्ग लगने से इसका अर्थ सौंपना हो जाता है।

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥१५॥

अन्वय—अयं भारः सविश्रमः हि। तु तस्य श्रमः प्रसक्तः। राजा हि यत्र अधीनः सर्वं तस्मिन् अधीनम्।

पदार्थ—प्रसक्त =लगातार। भार=जिम्मेवारी। (वासवदत्ता को सौंपना)। सविश्रम =विश्राम वाला।

[प्रकाशम्] अथ भोः! पर्यवस्थापित इदानीं स राजा।

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने। 'इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्, इत्येवं विलपन्तं तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम्। ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः। ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मि।

तापसी—सो खु गुणवन्तो णाम राआ, जो आअन्तुएण वि इमिणा एव्वं पसंसीअदि।

स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैव प्रशस्यते।

चेटी—भट्टदारिए! किं णु खु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि।

भर्तृदारिके! किं नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति।

पद्मावती—[आत्मगतम्] मम हिअएण एव्व सह मन्तिदं।

मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्।

ब्रह्मचारी—आपृच्छामि भवन्तौ। गच्छामस्तावत्।

उभौ—गम्यतामर्थसिद्धये।

ब्रह्मचारी—तथास्तु।

[निष्क्रान्त]

यौगन्धरायण—साधु, अहमपि तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि।

काञ्चुकीय—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल।

पद्मावती—अय्यस्स भइणिआ अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि।

आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते।

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति। [काञ्चुकीयमवलोक्य] गच्छामस्तावत्।

काञ्चुकीय—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।

यौगन्धरायण—तथास्तु।

[निष्क्रान्त]

काञ्चुकीय—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम्।

पद्मावती—अय्ये! वन्दामि।

आर्ये! वन्दे।

तापसी—जादे! तव सदिसं भत्तारं लभेहि।

जाते! तव सदृशं भर्तारं लभस्व।

वासवदत्ता—अय्ये! वन्दामि दाव अहं।

आर्ये! वन्दे तावदहम्।

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि।

त्वमप्यचिरेण भर्तारं समासादय।

वासवदत्ता—अणुग्गहीदम्हि।

अनुगृहीतास्मि।

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम्। इत इतो भवति ।। सम्प्रति हि,

व्याकरण—प्रसक्त =प्र+सञ्ज्+क्त। पर्यवस्थापित =परि +अव+स्था+णिच्+क्त। हसितम्=हस्+क्त (भावे)। क्त प्रत्यय जब भाव मे होता है तो कर्ता मे तृतीया और क्त-प्रत्ययान्त शब्द नपुसकलिङ्ग एकवचन हो जाता है। यहाँ पर कर्ता (मया) लुप्त (Understood) है। पर्युषितम्=परि+वस्+ (भावे)। प्रोषितनक्षत्रचन्द्रम्=प्रोषितानि नक्षत्राणि चन्द्रश्च यस्मात् तत्। आपृच्छामि='आङि नु-प्रच्छ्यो' से आत्मनेपद होना नियमानुकूल है न कि परस्मैपद। अत 'आपृच्छे' शुद्ध है।

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः,
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१६॥

[निष्क्रान्ता सर्वे]

अन्वय—खगा वासोपेता, मुनिजन सलिलम् अवगाढ। प्रदीप्त अग्नि भाति। धूम मुनिवनम् प्रविचरति। असौ दूरात् परिभ्रष्ट सङ्क्षिप्तकिरण रवि अपि च रथ व्यावर्त्य शनै अस्तशिखरम् प्रविशति।

पदार्थ—वासोपेता =बसेरो मे आ गये हैं। अवगाढ =घुसे है, उतर गये हैं। प्रविचरति=फैल रहा है। परिभ्रष्ट =गिरा हुआ। सक्षिप्तकिरण =(अपनी) किरणो के समेटनेवाला। व्यावर्त्य= रोक कर।

व्याकरण—अवगाढ =अव+गाह्+क्त (प्रथमा एक वच०) व्यावर्त्य=वि+आ+वृत्+णिच्+ल्यप्। सक्षिप्तकिरण = सक्षिप्ता किरणा येन तथाभूत।

उपर्युक्त पद्य भास के प्रकृति-चित्रण का उत्तम उदाहरण है। इसमे सन्ध्या का स्वाभाविक वर्णन है। भास कल्पना के

ब्रह्मचारी—आपृच्छामि भवन्तौ। गच्छामस्तावत्।

उभौ—गम्यतामर्थसिद्धये।

ब्रह्मचारी—तथास्तु।

[निष्क्रान्तः]

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल।

पद्मावती—अय्यस्स भइणिआ अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि।

आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते।

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति। [काञ्चुकीयमवलोक्य] गच्छामस्तावत्।

काञ्चुकीयः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।

यौगन्धरायणः—तथास्तु।

[निष्क्रान्तः]

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम्।

पद्मावती—अय्ये! वन्दामि।

आर्ये! वन्दे।

तापसी—जादे! तव सदिसं भत्तारं लभेहि।

जाते! तव सदृशं भर्तारं लभस्व।

वासवदत्ता—अय्ये! वन्दामि दाव अहं।

आर्ये! वन्दे तावदहम्।

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि।

त्वमप्यचिरेण भर्तारं समासादय।

वासवदत्ता—अणुग्गहीदह्मि।

अनुगृहीतास्मि।

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम्। इत इतो भवति!। सम्प्रति हि,

व्याकरण—प्रसक्त =प्र+सञ्ज्+क्त। पर्यवस्थापित =परि +अव+स्था+णिच्+क्त। हसितम्=हस्+क्त (भावे)। क्त प्रत्यय जब भाव मे होता है तो कर्ता मे तृतीया और क्त-प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग एकवचन हो जाता है। यहाँ पर कर्ता (मया) लुप्त (Understood) है। पर्युषितम्=परि+वस्+(भावे)। प्रोषितनक्षत्रचन्द्रम्=प्रोषितानि नक्षत्राणि चन्द्रश्च यस्मात् तत्। आपृच्छामि='आङि नु-प्रच्छ्यो' से आत्मनेपद होना नियमानुकूल है न कि परस्मैपद। अत 'आपृच्छे' शुद्ध है।

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः,
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१६॥

[निष्क्रान्ता सर्वे]

अन्वय—खगा वासोपेता, मुनिजन सलिलम् अवगाढ। प्रदीप्त अग्नि भाति। धूम मुनिवनम् प्रविचरति। असौ दूरात् परिभ्रष्ट सक्षिप्त-किरण रवि' अपि च रथ व्यावर्त्य शनै अस्तशिखरम् प्रविशति।

पदार्थ—वासोपेता =बसेरो मे आ गये हैं। अवगाढ =घुसे है, उतर गये हैं। प्रविचरति=फैल रहा है। परिभ्रष्ट =गिरा हुआ। सक्षिप्तकिरण =(अपनी) किरणो के समेटनेवाला। व्यावर्त्य= रोक कर।

व्याकरण—अवगाढ =अव+गाह्+क्त (प्रथमा एक वच०) व्यावर्त्य=वि+आ+वृत्+णिच्+ल्यप्। सक्षिप्तकिरण = सक्षिप्ता किरणा येन तथाभूत।

उपर्युक्त पद्य भास के प्रकृति-चित्रण का उत्तम उदाहरण है। इसमे सन्ध्या का स्वाभाविक वर्णन है। भास कल्पना के

परो पर नही उडते वल्कि सीधे-साधे नैसर्गिक रूप मे ही प्रकृति की सुषमा बखेर देते हैं।

प्रथमोऽङ्कः

अथ द्वितीयोऽङ्कः

[तत प्रविशति चेटी]

चेटी—कुञ्जरिए । कुञ्जरिए । कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी। किं भणासि, एसा भट्टिदारिआ माहवीलदामण्डवस्स पस्सदो कन्दुएण कीलदित्ति। जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि। [परिक्रम्यावलोक्य] अम्मो ! इअं भट्टिदारिआ उक्करिदकण्णचूलिएण वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणीअदसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि। जाव उवसप्पिस्स।

कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र भर्तृदारिका पद्मावती। किं भणसि, एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वत कन्दुकेन क्रीडतीति। यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि। अम्मो ! इय भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति। यावदुपसर्पामि।

[निष्क्रान्ता]

प्रवेशकः

पदार्थ—चेटी=दासी। **कुञ्जरिका**=पद्मावती की दासी का नाम। **माधवीलता**=वासन्तीलता। (यह एक सुन्दर फूलो की वेल होती है। सस्कृत कवियो का इमसे विशेष अनुराग है)। **उत्कृतकर्णचूलिकेन**=

कानो के भूपण को ऊपर चढाये हुए। व्यायाम=थकावट। स्वेदबिन्दु-विचित्रितेन=जो (मुख) पसीने की बूदो से विचित्र दिखाई दे रहा था।

व्याकरण—उत्कृतकर्णचूलिकेन=उत्कृता कर्णचूलिका यस्मिन् तेन। खेलने के समय लडकियाँ प्राय अपने कानो के भूषणो को कानो पर चढा लेती है, ताकि खेलने मे सुविधा रहे।

किं भणसि, एपा भर्तृदारिका=यहाँ पर स्वय ही प्रश्न और स्वय ही उत्तर दिया गया है। नाट्यशास्त्र के अनुसार इसे 'आकाशभाषित' कहते हैं। इसमे एक पात्र स्वयं प्रश्न करता है और स्वय दूसरे पात्र की ओर से, जो वहाँ नही होता, सुनने का वहाना करते हुए उत्तर देता है। जैसा कि लक्षण से स्पष्ट है—

"किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्र ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्॥"

प्रवेशक—इसका लक्षण—

"प्रवेशकानुदात्तोक्त्या नीचपात्र-प्रयोजित।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेय शेष विष्कम्भके यथा॥"

यह पिछली घटनाओ का सम्वन्ध अगली घटनाओ से स्थापित करता है, जो प्राकृत मे वातचीत करते हैं। प्रवेशक दो अङ्को के वीच मे होता है, अर्थात् प्रथमाङ्क के आदि मे नही होता।

[तत प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती
सपरिवारा वासवदत्तया सह]

वासवदत्ता—हला! एसो दे कन्दुओ।
हला! एप ते कन्दुक।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अय्यउत्त भत्तारं अभिलसदि ।
[प्रकाशम्] केण कारणेण ?

आर्यपुत्र भर्त्तारमभिलषति । केन कारणेन ?

चेटी—साणुक्कोसो त्ति ।

सानुक्रोश इति ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] जाणामि जाणामि । अअं वि जणो एव्वं उम्मादिदो ।

जानामि जानामि । अयमपि जन एवमुन्मादित ।

चेटी—भट्टिदारिए ! जदि सो राआ विरूवो भवे ?

भर्तृदारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?

वासवदत्ता—णहि णहि । दसणीओ एव्व ।

नहि नहि । दर्शनीय एव ।

पद्मावती—अय्ये ! कहं तुवं जाणासि ?

आर्ये ! कथ त्व जानासि ?

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो । किं दाणिं करिस्सं । होदु, दिट्ठं ।
[प्रकाशम्] हला ! एव्व उज्जइणीओ जणो मन्तेदि ।

आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्त समुदाचार । किमिदानी करिष्यामि । भवतु, दृष्टम् । हला ! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते ।

पद्मावती—जुज्जइ । ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो । सव्वजणमणोभिराम खु सोभग्गं णाम ।

युज्यते । न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभ । सर्वजनमनोभिराम खलु सौभाग्य नाम ।

[तत प्रविशति धात्री]

धात्री—जेदु भट्टिदारिआ। भट्टिदारिए! दिण्णासि।
जयतु भर्तृदारिका। भर्तृदारिके! दत्तासि।

वासवदत्ता—अय्ये! कस्स?
आर्य्ये! कस्मै?

पदार्थ—निर्वृत्तम्=रखा गया। सम्बन्ध=विवाह-सम्बन्ध। सानुक्रोश=करुणायुक्त (Kind hearted । विरूपः=कुरूप। दर्शनीय=सुन्दर। पक्षपातेन=प्रेम के कारण। समुदाचार= आचार, मर्यादा। अतिक्रान्त.=उल्लघन कर दिया है। सौभाग्यम्= सुन्दरता।

व्याकरण—उज्जयिनीय=उज्जयिन्या भव। सानुक्रोश= अनुक्रोशेन सह वर्तते इति। उन्मादित=उद्+मद्+णिच्+क्त, प्रथ० एक वचन। अतिक्रान्त=अति+क्रम्+क्त+प्रथ० एक वचन। सौभाग्यम्=सुभगस्य भाव, सुभग+ष्यञ्। दत्ता=दा +क्त+टाप्। प्रतीष्टा=प्रति+इष्+क्त=टाप्।

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स।
वत्सराजायोदयनाय।

वासवदत्ता—अह कुसली सो राआ?
अथ कुशली स राजा?

धात्री—कुसली सो इह आअदो। तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ।
कुशली स इहागत। तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च।

वासवदत्ता—अच्चाहिदं।
अत्याहितम्।

धात्री—किं एत्थ अच्चाहिदं ?

किमत्र अत्याहितम् ?

वासवदत्ता—ण हु किञ्चि । तह णाम सन्तप्पिअ उदासीणो होदि त्ति ।

न खलु किञ्चित् । तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति ।

धात्री—अय्ये ! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होन्ति ।

आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।

वासवदत्ता—अय्ये ! सअं एव्व तेण वरिदा ?

आर्ये ! स्वयमेव तेन वरिता ?

धात्री—णहि णहि । अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविण्णाणवओरूवं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा ।

नहि नहि । अन्यप्रयोजनेनेहागतस्य अभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] एव्वं । अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो ।

एवम् । अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्र ।

[प्रविश्यापरा]

चेटी—तुवरदु तुवरदु दाव अय्या । अज्ज एव्व किल सोभणं नक्खत्तं । अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कादव्वं त्ति अह्माणं भट्टिणी भणादि ।

त्वरतां त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम् । अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] जह जह तुवरदि, तह तह अन्धी-
करेदि मे हिअअं ।

यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।

धात्री—एदु एदु भट्टिदारिआ ।

एतु एतु भर्तृदारिका ।

[निष्क्रान्ता सर्वे]

व्याकरण—अत्याहितम्=अतिशयेन आधीयते मनसि इति । उदयन के विवाह का समाचार सुनकर वासवदत्ता के मन मे गहरी ठेस लगती है । उसे राजा पर ऐसी आशा नही थी कि वह इतनी जल्दी पद्मावती को स्वीकार कर लेगा ।

सन्तप्य=सम्+तप्+ल्यप् । उदासीन =उद्+आस्+शानच्+प्रथ० एक वचन । आगमप्रधानानि=आगम शास्त्रं प्रधान येषा तानि ।

शास्त्रो पर विश्वास रखने के कारण महापुरुषो के हृदय सहज ही ठीक हो जाते हैं ।

अभिजनविज्ञानवयोरूपम्=वे चार गुण जिनका विवाह से पूर्व प्राय विचार किया जाता है । वैसे तो सात गुण देखकर सम्बन्ध करना चाहिए । जैसे कि कहा है—

कुल च शील च सनाथता च,
विद्या च वित्त च वपुर्वयश्च ।
एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया,
कन्या बुधै शेषमचिन्तनीयम् ॥

शोभननक्षत्रम्=शुभ नक्षत्र । उन ग्यारह नक्षत्रो मे से एक नक्षत्र जो ज्योतिष शास्त्र के अनुसार विवाह के लिए शुभ माने जाते हैं । ऐसे नक्षत्रो के नाम—रोहिणी, मृगशिरा, मघा,

तीनो उत्तरा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, मूला और रेवती। कौतुकमङ्गलम्=विवाह सूत्र को कहते है। यह विवाह मे वर के दायें और वधू के वायें वाहु पर वाँधा जाता है। इसे कङ्गन भी कहते हैं।

द्वितीयोऽङ्क.।

अथ तृतीयोऽङ्कः

[तत प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता]

वासवदत्ता—विवाहामोदसकुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदिं इह आअदह्मि पमदवणं। जाव दाणिं भाअधेअणिव्वुत्त दुःख विणोदेमि। [परिक्रम्य] अहो! अच्चाहिदं। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो। जाव उवविशामि। [उपविश्य] धण्णा खु चक्कवाअवहू, जा विरहिदा ण जीवइ। ण खु अह पाणाणि परित्तजामि। अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ।

विवाहामोदसकुले अन्त पुरचतु शाले परित्यज्य पद्मावती-मिहागतास्मि प्रमदवनम्। यावदिदानी भागधेयनिर्वृत्त दु ख विनोदयामि। अहो! अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीय सवृत्त। यावद् उपविशामि। धन्या खलु चक्रवाकवधू, या विरहिता न जीवति। न खल्वह प्राणान् परित्यजामि। आर्यपुत्र पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा।

[तत प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी]

चेटी—कहिं णु खु गदा अय्या आवन्तिआ [परिक्रम्यावलोक्य] अम्मो! इअ चिन्तासुण्णहिअआ णीहारपडिहदचन्दलेहा

विअ अमण्डिदभद्दअं वेसं धारअन्दी पिअंगुसिलापट्टए उवविट्ठा। जाव उवसप्पामि। [उपसृत्य] अय्ये आवन्तिए! को कालो, तुमं अण्णेसामि।

क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका। अम्मो! इय चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रक वेष धारयन्ती प्रियगुशिलापट्टके उपविष्टा। यावदुपसर्पामि। आर्ये आवन्तिके! क काल, त्वामन्विष्यामि।

वासवदत्ता—किण्णिमित्त ?

किन्निमित्तम् ?

चेटी—अह्माअं भट्टिणी भणादि—महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउणा त्ति। इमं दाव कोदुअमालिअं गुह्मदु अय्या।

अस्माक भट्टिनी भणति—महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति। इमा तावत् कौतुकमालिका गुम्फत्वार्या।

वासवदत्ता—अह कस्स किल गुह्मिदव्वं ?

अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम् ?

चेटी—अह्माअं भट्टिदारिआए।

अस्माक भर्तृदारिकायै।

पदार्थ—प्रमदवन=वह उद्यान जहाँ रनिवास की स्त्रियाँ खेलती अथवा सैर करती हैं।

व्याकरण—विचिन्तयन्ती=वि+चिन्त् (चुरादि)+शतृ+ई। चतुश्शालम्=चतसृणा शालाना समाहार (समाहार द्वन्द्व) निर्वृत्तम्=निर्+वृत्+क्त, नपु० एक वच०। अत्याहितम्=अतिशयेन आधीयते मनसि इति। चिन्ताशून्यहृदया=चिन्तया शून्य हृदय यस्या सा(बहुव्री०)। नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा=नीहारेण

प्रतिहता चन्द्रस्य लेखा। धारयन्ती=घृ+णिच्+शतृ+ई। क काल =यह भास का निराला प्रयोग है। वैसे व्याकरणानुसार 'कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे' से द्वितीया होती है। अन्विष्यामि=अनु+इष्+लट्, उत्तम पु० एकवचन। प्रसूता=प्र+सू+क्त+टाप्।

स्निग्धा निपुणेति=ये विशेषण वासवदत्ता के लिए महारानी ने प्रयुक्त किये है। इनसे यह भाव व्यक्त होता है कि वासवदत्ता वडे प्रेम तथा कौशल से माला गूँथेगी। कौतुकमालिका=विवाह की माला (Nuptial Garland)

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] एदं पि मए कत्तव्वं आसी। अहो! अकरुणा खु इस्सरा।

एतदपि मया कर्तव्यमासीत्। अहो! अकरुणा खल्वीश्वरा।

चेटी—अय्ये! मा दाणिं अण्ण चिन्तिअ। एसो जामादुओ मणिभूमीए ह्णाअदि। सिग्घं दाव गुह्मदु अय्या।

आर्ये! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा। एष जामाता मणिभूम्या स्नायति। शीघ्र तावद् गुम्फत्वार्या।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] ण सक्कुणोमि अण्ण चिन्तेदुं। [प्रकाशम्] हला! किं दिट्ठो जामादुओ?

शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम्। हला! किं दृष्टो जामाता?

चेटी—आम, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअ कोदूहलेण अ।

आम्, दृष्टो भर्तृदारिकाया स्नेहेनास्माक कौतूहलेन च।

वासवदत्ता—कीदिसो जामादुओ? कीदृशो जामाता?

चेटी—अय्ये ! भणामि दाव, ण इरिसो दिट्ठपुरुवो ।

आर्ये ! भणामि तावद्, नेदृशो दृष्टपूर्व ।

वासवदत्ता—हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ?

हला ! भण भण, किं दर्शनीय ?

चेटी—सक्कं भणिदुं सरचावहीणो कामदेवो त्ति ।

शक्य भणितु शरचापहीन कामदेव इति ।

वासवदत्ता—होदु एत्तअ । भवत्वेनावत् ।

चेटी—किण्णिमित्तं वारेसि ?

किन्निमित्त वारयसि ?

वासवदत्ता—अजुत्त परपुरुससङ्कित्तणं सोदुं ।

अयुक्त परपुरुषसङ्कीर्त्तन श्रोतुम् ।

चेटी—तेण हि गुह्मदु अय्या सिग्घ ।

तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम् ।

वासवदत्ता—इअ गुह्मामि । अणेहि दाव ।

इय गुम्फामि । आनय तावत् ।

चेटी—गह्णदु अय्या ।

गृह्णात्वार्या ।

वासवदत्ता—[वर्जयित्वा विलोक्य] इमं दाव ओसहं किं णाम ?

इद तावदौषध किं नाम ?

चेटी—अविहवाकरण णाम ।

अविधवाकरण नाम ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] इद बहुसो गुह्मिदव्व मम अ पदुमावदीए अ । [प्रकाशम्] इद दाव ओसह किं णाम ।

इद बहुशो गुम्फितव्य मम च पद्मावत्याश्च । इद तावदौषध कि नाम ?

चेटी—सवत्तिमद्दणं णाम । सपत्नीमर्दन नाम ।

वासवदत्ता—इद ण गुह्मिदव्व । इद न गुम्फितव्यम् ।

चेटी—कीस ? कस्मात् ?

वासवदत्ता—उवरदा तस्स भय्या, त णिप्पओअण त्ति।

उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति ।

[प्रविश्यापरा]

चेटी—तुवरदु तुवरदु अय्या। एसो जामादुओ अविहवाहि-अब्भन्तरचउस्सालं पवेसीअदि।

त्वरता त्वरतामार्या। एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतु शाल प्रवेश्यते ।

वासवदत्ता—अइ ! वदामि, गह एद । अयि ! वदामि, गृहाणैतत् ।

चेटी—सोहण ! अय्ये ! गच्छामि दाव अह ।

शोभनम् । आर्ये ! गच्छामि तावदहम् ।

[उभे निष्क्रान्ते]

वासवदत्ता—गदा एसा। अहो ! अच्चाहिद। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो। अविदा ! सय्याए मम दुक्खं विणोदेमि। जदि णिद्दं लभामि।

गतैषा । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीय सवृत्त । अविदा ! शय्याया मम दु ख विनोदयामि, यदि निद्रा लभे ।

[निष्क्रान्ता]

अहो अकरुणा खल्वीश्वरा =होने वाली सौत पद्मावती के विवाह की माला गूंथना वासवदत्ता के लिए अति दु खदायक था। परन्तु ऐसा करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नही था। इसी कारण वह अपने भाग्य को कोस रही थी।

मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा=(मा+इदानीम्+अन्यत्+चिन्तयित्वा) मा का प्रयोग पाणिनि-व्याकरणानुकूल नही है। हो सकता है भास के समय मे ऐसा प्रचलित हो। 'मा चिन्तय' होना चाहिए। 'मा' अव्यय के साथ त्वा का प्रयोग अशुद्ध है। त्वा का प्रयोग अलम् और खलु के योग मे ही होता है।

शरचापहीन कामदेव =उदयन बहुत सुन्दर था, इसीलिए उसे कामदेव कहा गया है। कामदेव और उदयन मे केवल यही भेद है कि कामदेव के हाथ मे धनुष-बाण रहता है, परन्तु उदयन इससे रहित है।

अविधवाकरणम्=एक ओषधि का नाम है। विवाह मे इसका प्रयोग किया जाता है। इससे विधवा होने का भय नही रहता।

सपत्नीमर्दनम्=यह भी ओषधि का नाम है। इसके प्रयोग से सौत का नाश हो जाता है। स्मरण रहे कि वासवदत्ता इस ओषधि को इसलिए नही गूंथना चाहती कि पद्मावती की सौत होने के कारण कही उसका अपना नाश ही न हो जाय।

व्याकरण—अविदा=यह कोई पौराणिक काल का रूप है, सस्कृत कोष मे नही मिलता। 'आविद' शब्द मिलता है। यह शोक-सूचक अव्यय है। उपरता=उप+रम्+क्त+टाप्। प्रवेश्यते=प्र+विश्+णिच्, कर्मणि लट्, प्रथम पु० एक वच०। गृहाण=ग्रह्+लोट्, मध्य० पु० एक वचन।

अविधवाभि प्रवेश्यते=वैवाहिक कृत्यो मे विधवा स्त्रियो का भाग लेना अशुभ समझा जाता है। इसलिए सौहागिन स्त्रियाँ सब काम करती हैं।

तृतीयोऽङ्कः।

अथ चतुर्थोऽङ्कः

[तत प्रविशति विदूषक]

विदूषकः—[सहर्षम्] भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो। भो ! को णाम एदं जाणादि—तादिसे वय अणत्थसलिलावत्ते पक्खिता उग उम्मज्जिस्सामो त्ति। इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु हाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि। एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि। सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि, जह वादसोणिदं अभिदो विअ वित्तदि त्ति पेक्खामि। भो ! सुहं णामअपरिभूदं अकल्लवत्तं च।

भो ! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्य अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीय कालो दृष्ट। भो ! को नामैतज्जानाति—तादृशे वयमर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ता पुनरुन्मङ्क्ष्याम इति। इदानी प्रासादेषूष्यते, अन्त पुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्यनप्सरस्नवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते। एक खलु महान् दोष, ममाहार सुष्ठु न परिणमति। सुप्रच्छदनाया शय्याया निद्रा न लभे, यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्यामि। भो ! सुख नामयपरिभूतमकल्यवर्त च।

विदूषक=यह नाटक के नायक का मित्र होता है। यह प्राय हास्यप्रिय ब्राह्मण और खान-पान मे विशेष अनुराग रखने वाला होता है। साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

'कुसुमवसन्ताद्यभिध कर्मवपुर्वेपभाषाद्यै ।
हास्यकर कलहरतिर्विदूपक स्यात् स्वकर्मज्ञ ॥'

उत्तरकुरु=मेरु पर्वत से उत्तर दिशा के प्रदेश जहाँ अनन्त शान्ति का राज्य है, उत्तरकुरुभूमि कहलाते हैं। इन्ही स्थलो को देवभूमि भी कहा जाता है। वातशोणितम्=एक प्रकार का रोग है, जिसे वातरक्त (Gout, Rheumatism) कहा जाता है।

पदार्थ—अनर्थसलिलावर्ते=विपत्तिरूपी जलभँवर मे। कल्यवतम्=प्रात काल का जलपान (Break fast) आमयपरिभूतम्= रोग-ग्रस्त ।

व्याकरण—अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीय =अभिप्रेत यद् विवाहमङ्गल तेन रमणीय । (तृती० तत्पु०) सलिलावर्ते= सलिलस्य आवर्ते (प० तत्पु०)। उन्मङ्क्ष्याम =उत्+मन्ज् +लृट्, उत्त० पु० वहुवचन। प्रक्षिप्ता=प्र+क्षिप्+क्त, प्रथ० वहु वचन। उष्यते=वस् कर्मवाच्य लृट्, प्र० पुरुप एक वचन। अनप्सरस्सवास =अविद्यमान अप्सरोभि सवास यस्मिन् स (वहुव्री०) अप्सरस् शब्द सदा वहुवचन मे प्रयुक्त होता है।

[तत प्रविशति चेटी]

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ। [परिक्रम्यावलोक्य]
अह्मो ! एसो अय्यवसन्तओ। [उपगम्य] अय्य वसन्तअ! को कालो, तुम अण्णेसामि।

कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक । अहो ! एप आर्यवसन्तक । आर्य वसन्तक ! क काल , त्वामन्विप्यामि ।

विदूषक —[दृष्ट्वा] किंणिमित्तं भद्दे ! म अण्णेससि ।
किन्निमित्त भद्रे ! मामन्विष्यसि ।

चेटी—अह्माण भट्टिणी भणादि—अवि ह्णादो जामादुओ त्ति ।
अस्माक भट्टिणी भणति अपि स्नातो जामातेति ।

विदूषकः—किंणिमित्त भोदि ! पुच्छदि ?
किन्निमित्त भवति ! पृच्छति ?

चेटी—किमण्ण । सुमणावण्णअं आणेमि त्ति ।
किमन्यत् । सुमनोवर्णकमानयामीति ।

विदूषक —ह्णादो तत्तभवं । सव्व आणेदु भोदी वज्जिअ भोअणं ।
स्नातस्तत्रभवान् । सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम् ।

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि भोअणं ?
किन्निमित्त वारयसि भोजनम् ?

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाण अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो संवुत्तो ।
अधन्यस्य मम, कोकिलानाम् अक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्त सवृत्त ।

चेटी—ईदिसो एव्व होहि । ईदृश एव भव ।

विदूषक.—गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो सआसं गच्छामि ।
गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवत सकाश गच्छामि ।

[निष्क्रान्तौ]

प्रवेशक. ।

व्याकरण—क काल त्वामन्विष्यामि—भास को इस वाक्य का वहुत अभ्यास है । देखो तृतीयाङ्क के आरम्भ मे । सुमनो-

वर्णकम्=सुमनोभि सहित वर्णकम् । अक्षिपरिवर्त =अक्ष्णो परिवर्त (ष० तत्पु०) । कुक्षिपरिवर्त =कुक्षे परिवर्त (ष० तत्पु०) ।

सुमनोवर्णकम्=यह फूल और चन्दनादि का लेप होता है, जो राजाओ अथवा महापुरुषो की पूजा के लिए प्रयोग मे लाया जाता है ।

[तत प्रविशति सपरिवारा पद्मावती
आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च]

चेटी—किंणिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवण आअदा ?

किन्निमित्त भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुह्मआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति ।

हला ! ते तावच्छेफालिकागुल्मका पश्यामि कुसुमिता वा न वेति ।

चेटी-भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मोत्तिआलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं ।

भर्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिता कुसुमै ।

पद्मावती—हला ! जदि एव्वं, किं दाणिं विलम्बेसि ?

हला ! यद्येवम्, किमिदानीं विलम्बसे ?

चेटी—तेण हि इमस्सिं सिलावट्टए मुहुत्तअं उपविसदु भट्टिदारिआ जाव अहं वि कुसुमावचअं करेमि ।

तेन ह्यस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्तकमुपविशतु भर्तृदारिका । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि ।

पद्मावती—अय्ये ! किं एत्थ उपविसामो ?
आर्य ! किमत्रोपविशाव ?

वासवदत्ता—एव्व होदु । एव भवतु ।

[उभे उपविशत]

चेटी—[तथा कृत्वा] पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणशिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अञ्जलिं ।
पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका अर्द्धमन शिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरित मेऽञ्जलिम् ।

पद्मावती—[दृष्ट्वा] अहो ! विइत्तदा कुसुमाणं । पेक्खदु पेक्खदु अय्या ।
अहो ! विचित्रता कुसुमानाम् । पश्यतु पश्यात्वार्या ।

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाणं ।
अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् ।

चेटी—भट्टिदारिए ! किं भूयो अवइणुस्सं ?
भर्तृदारिके ! किं भूयोऽवचेष्यामि ?

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ ।
हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।

वासवदत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ।
हला ! किन्निमित्त वारयसि ?

पद्मावती—अय्यउत्तेण इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिअ सम्माणिदा भवेअ ।
आर्यपुत्रेण इहागत्येमा कुसुमसमृद्धि दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता । हला ! प्रियस्ते भर्ता ।

पद्मावती—अय्ये ! ण आणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि ।

आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] दुक्खरं खु अहं करोमि । इअ वि णाम एव्वं मन्तेदि ।

दुष्करं खल्वहं करोमि । इयमपि नामैव मन्त्रयते ।

चेटी—अभिजादं खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तेत्ति ।

अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितम्—प्रियो मे भर्तेति ।

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो । एकः खलु मे सन्देहः ।

वासवदत्ता—किं किं ? किं किम् ?

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति ।

यथा ममार्यपुत्रस्तथैवार्याया वासवदत्ताया इति ।

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं । अतोऽप्यधिकम् ।

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि ? कथं त्वं जानासि ?

व्याकरण—पश्यामि=वर्तमान काल का यह प्रयोग भविष्यत्काल के स्थान पर हुआ है । 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इस नियम के अनुसार वर्तमान काल का प्रयोग होता है । कुसुमिता=कुसुमानि जातानि एषाम् इति, कुसुम+इतच्, प्रथ० बहुवचन । प्रवालान्तरितैः=प्रवालैः अन्तरितैः (तृती० तत्पु०) । मौक्तिकलम्बकैः=मौक्तिकानां लम्बकैः । आचित= आ+चि+क्त (कर्मणि) । अवचय=यह व्याकरणानुसार शुद्ध नहीं है, 'अवचाय' होना चाहिए । अर्द्धमन शिलापट्टकैरिव=

अर्द्ध मन शिलापट्टो येषा तैरिव । मा भूयो अवचित्य=यह अशुद्ध है। भास ने तीसरे अङ्क मे भी इसी प्रकार का प्रयोग किया है। ऐसा प्रयोग व्याकरणानुसार केवल 'अल' और 'खलु' के साथ ही हो सकता है, 'मा' के साथ नही। अर्द्धमन शिला-पट्टकैरिव=शेफालिका के फूलो की डण्डी लाल परन्तु पत्तियां श्वेत होती है। इसीलिए यह फूल मनसिल (Red arsenic) के आवे भाग के समान प्रतीत होता है।

शेफालिका=एक प्रकार के सुगन्धित फूल। प्रवालान्तरितैर्मौक्तिकलम्बकै=यहाँ पर फूलो के लालवर्ण तथा श्वेतवर्ण से अभिप्राय है। जिससे पता लगता है कि मोती और लाल पिरोये हुए हैं।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] ह, अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। एव्व दाव भणिस्स। [प्रकाशम्] जइ अप्पो सिरोहो, सा सजणं ण परित्तजदि।

हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्त समुदाचार। एव तावद् भणिष्यामि। यद्यल्प स्नेह, सा स्वजन न परित्यजति।

पद्मावती—होदव्व।

भवितव्यम्।

चेटी—भट्टिदारिए। साहु भट्टार भणाहि—अह पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति।

भर्तृदारिके! साधु भर्तार भण—अहमपि वीणा शिक्षिष्य इति।

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो।

उक्तो मयार्यपुत्र।

वासवदत्ता—तदो किं भणिदं ?

तत किं भणितम् ?

पद्मावती—अभणि किञ्चि दिग्घ णिस्ससि अ तुह्णीओ सवुत्तो ।

अभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं नि श्वस्य तूष्णीक सवृत्त ।

वासवदत्ता—तदो तुवं किं विअ तक्केसि ।

ततस्त्व किमिव तर्कयसि ।

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासदत्ताए गुणाणि सुमरिअ दक्खिण्णदाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति ।

तर्कयाम्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दाक्षिण्यतया ममाग्रतो न रोदितीति ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] धञ्ञा खु ह्मि, जदि एव्वं सच्च भवे ।

धन्या खल्वस्मि, यद्येव सत्य भवेत् ।

[तत प्रविशति राजा विदूषकश्च]

विदूषकः—ही ! ही ! पचिअपडिअवन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवण । इदो दाव भवं ।

ही ! ही ! प्रचितपतितवन्धुजीवकुसुमविरलवातरमणीय प्रमदवनम् । इतस्तावद् भवान् ।

राजा—वयस्य वसन्तक ! अयमयमागच्छामि ।

व्याकरण—आर्यपुत्रपक्षपातेन=आर्यपुत्रस्य पक्षपात (ष० तत्पु०) तेन (हेतौ तृतीया) । अभणित्वा=(समासेऽनञ् पूर्वे क्त्वो ल्यप्) यहाँ पर नञ् समास है इसलिए त्वा को ल्यप् नही होता । नि श्वस्य=निस्+श्वस्+ल्यप् । तूष्णीक =तूष्णी शील =तूष्णीक । कवि का यह प्रयोग चिन्त्य है। प्रचित-

पतितबन्धुजीवकुसुमविरलवातरमणीयम् = प्रचितपतितानि बन्धुजीवकुसुमानि (कर्मधारय) प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमानि विरलवात च (द्वन्द्व) प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलवाता तै रमणीयम् (तृ० तत्पु०)।

आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्त समुदाचार =वासवदत्ता समझ जाती है कि उसने आर्यपुत्र के प्रेम के वश मे न कहने योग्य शब्द कह दिये हैं। इस अज्ञातवास के समय मे थोड़ा-सा भी भेद निकल जाने पर उसका सारा त्याग और मेहनत मिट्टी मे मिल सकती थी। इसीलिए वह सोचती है कि प्रेम के वश मे उसने अनुचित बात कह दी है।

बन्धुजीव=एक प्रकार के फूल का नाम है।

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते,
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वय,
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ॥१॥

अन्वय·—तदा उज्जयिनी गते, अवन्तिराजतनया स्वैर दृष्ट्वा काम् अपि अवस्था गते मयि कामेन पञ्चेषव पातिता, तै मम हृदयम् अद्यापि सशल्यम् एव, वय भूयश्च विद्धा, यदा मदन पञ्चेषु, अय षष्ठ शर पतित· ?

पदार्थ—स्वैरम् = जी भर कर । सशल्यम् = बीधा हुआ। पञ्चेषु =पाच वाणो वाला, कामदेव।

व्याकरण—स्वैरम्=क्रियाविशेषण। स्व+ईरम्। 'स्वादीरेरिणो' से वृद्धि हुई। विद्धा = व्यध्+क्त (कर्मणि) पञ्चेषु =पञ्च इषव यस्य (बहुव्री०)। पातिता.=पत्+णिच्+क्त प्रथमा वहुवचन। कामदेव को 'पञ्चेषु.' (पाँच

वाणो वाला) कहा जाता है। उसके पांच वाण ये हैं—कमल, अशोक, आम, नवमल्लिका और नीलकमल।

विदूषकः—कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावदी। लदामण्डवं गदा भवे उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्घचम्मावगुण्ठिदं विअ पव्वतिलअं णाम शिलापट्टअं गदा भवे, आदु अधिअकडुअगन्धसत्तच्छदवणं पविट्ठा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसङ्कुलं दारुपव्वदअं गदा भवे। [ऊर्ध्वमवलोक्य] ही! ही! सरअकालणिम्मले अन्तरिक्खे पसारिअवलदेववाहुदसणीअं सारसपन्तिं जाव समाहिदं गच्छन्तिं पेक्खदु दाव भवं।

कुत्र नु खलु गता तत्रभवती पद्मावती। लतामण्डपं गता भवेद्। उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्मावगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेद्, अथवा अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेद्, अथवा आलिखितमृगपक्षिसकुलं दारुपर्वतकं गता भवेत्। ही! ही! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितबलदेववाहुदर्शनीयां सारसपंक्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावद् भवान्।

व्याकरण—असनकुसुमसञ्चितम् = असनकुसुमैः सञ्चितम् (तृती० तत्पु०)। व्याघ्रचर्मावगुण्ठितम्=व्याघ्रचर्मणाऽवगुण्ठितम् (तृती० तत्पु०)। आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलम्=आलिखिता मृगाश्च पक्षिणः (द्वन्द्व) तैः सङ्कुलम् (तृती० तत्पु०)। समाहितम्=सम्+आ+धा+क्त।

पर्वततिलक=प्रमोद वन मे पडी हुई शिला का नाम है।

राजा—वयस्य ! पश्यास्येनाम्,

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥२॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एद कोकणदमालापण्डर-रमणीअ सारसपन्ति जाव समाहिद गच्छन्ति । अम्मो ! भट्टा ।

पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका एता कोकनदमालापाण्डुररमणीया सारसपक्ति यावत् समाहित गच्छन्तीम् । अहो ! भर्ता ।

पद्मावती—हं, अय्यउत्तो । अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्त-दसण परिहरामि । ता इम दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो ।

हम्, आर्यपुत्र । आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शन परि-हरामि । तदिम तावन्माधवीलतामण्डप प्रविशाम ।

वासवदत्ता—एव्व होदु । एव भवतु ।

[तथा कुर्वन्ति]

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे ।

तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।

राजा—कथं भवान् जानाति ?

विदूषकः—इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं ।

इमानवचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छकान् प्रेक्षता तावद् भवान् ।

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य वसन्तक !

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] वसन्तअसङ्कित्तणेण अहं पुण जाणामि उज्जइणाए वत्तामि त्ति ।

वसन्तकसङ्कीर्तनेनाह पुनर्जानामि उज्जयिन्या वर्तं इति ।

अन्वय—ऋज्वायता च विरला च नतोन्नता च निवर्तनेषु सप्तर्षिवंशकुटिला च निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य विभज्यमाना सीमाम् इव एना पश्यामि ।

पदार्थ—ऋज्वायताम्=सीधी और लम्बी । विरलाम्=पतली । नतोन्नताम्=ऊँची-नीची । निवर्तनेषु=घुमावों में । सप्तर्षिवंशकुटिनाम्=सप्तर्षि (Great Bear) तारों की तरह टेढी । भुजगोदर=साप का पेट ।

व्याकरण—ऋज्वायता=ऋजु चासौ आयता च (कर्मधारय)। नतोन्नता=नता च उन्नता च(कर्मधारय)। भुजगोदरम् =भुजगस्य उदरम् (ष० तत्पु०)। निर्मुच्यमान=निर्+मुच्+(कर्मवाच्य में) शानच् । विभज्यमान=वि+भज्+(कर्मणि) शानच् ।

कोकनदमालापाण्डुररमणीया=कोकनदमाला इव पाण्डुर-रमणीया (कर्मधारय) ।

तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि=प्रोषितभर्तृका होने के कारण वासवदत्ता के लिए किसी परपुरुष का दर्शन करना ठीक नहीं । इस कारण पद्मावती राजा के दर्शनों की इच्छा होते हुए भी इस विचार से कि वासवदत्ता को कष्ट होगा, नहीं करती ।

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतीक्षिष्यावहे ।

विदूषकः—भो । तह । [उपविश्योत्थाय] ही ! ही । सरअकाल-तिक्खो दुस्सहो आदवो । ता इमं दाव माहवीमण्डवं पविसामो ।

भोस्तथा । ही । ही । शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतप । तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशाम ।

राजा—बाढम् । गच्छाग्रत ।

विदूषक —एव्व होदु । एवं भवतु ।

[उभौ परिक्रमत]

पद्मावती—सव्व आउलं कत्तुकामो अय्यवसन्तओ । किं दाणिं करेह्म ।

सर्वमाकुलं कर्तुकाम आर्यवसन्तक । किमिदानीं कुर्म ।

चेटी—भट्टिदारिए । एदं महुअरपरिणिलीणं ओलवलदं ओधूय भट्टारं वारयिस्सं ।

भर्तृदारिके । एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्तारं वारयिष्यामि ।

पद्मावती—एव्वं करेहि । एवं कुरु ।

[चेटी तथा करोति]

विदूषक —अविहा ! अविहा । चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं ।

अविह । अविह । तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—दासीएपुत्तेहिं महुअरेहिं पीडिदो ह्मि ।

दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि ।

राजा—मा मा भवानेवम् । मधुकरसन्त्रासः परिहार्यः ।
पश्य—

व्याकरण—आसीनौ=आस्+शानच् (प्रथ० द्विवचन)। उत्थाय=उद्+स्था+ल्यप् । कर्तुकामः=कर्तुम् कामः यस्य सः (बहुव्री०)। बहुव्रीहि समास मे काम और मनस् आ जायँ तो 'म्' नही रहता । मधुकरपरिनिलीनाम्=मधुकरैः परितः निलीनाम् (तृ० तत्पु०)=परि+नि+ली+क्त+आ, द्विती० एकवचन । अवधूय=अव+धू+ल्यप् । दास्या पुत्रैः=अलुक् समास । निन्दा मे अलुक् समास होता है । परिहार्य =परि+हृ+ण्यत् । मधुकरसन्त्रास =मधुकराणा सन्त्रास (ष० तत्पु०)।

शरत्कालतीक्ष्णो दुःसह आतप =शरद् ऋतु मे गर्मी वेशक इतनी अधिक नही होती परन्तु धूप की तेजी अत्यन्त व्याकुल करने वाली होती है । इसीलिए किसी कवि ने कहा है —

आश्विन की धुप देख कर, दिया भरत ने रोय ।
जिस वन प्यारे रामचन्द्र हैं, उस वन छाया होय ॥

भवभूति ने भी उत्तररामचरित मे शरद ऋतु की गर्मी की तुलना हृदय को सुखा देने वाली विरहाग्नि से की है ।

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलून
हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोक ।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्या शरीर
शरदिज इव घर्म केतकीगर्भपत्रम् ॥

उत्तररामचरित तृ० अङ्क ।

अवलम्बलता—बडी लता को कहते है, जो छोटी लताओ को सहारा देती है । दास्या पुत्र =यह एक अपमानसूचक शब्द

है और गाली की तरह प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ भँवरो के लिए इसका व्यवहार किया गया है।

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभि· प्रियाभिरुपगूढाः।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥३॥
तस्मादिहैवासिष्यावहे।

विदूषक·—एव्व होदु। एव भवतु।

अन्वय—मधुमदकला मदनार्ताभि प्रियाभि उपगूढा मधुकरा पादन्यासविषण्णा वयम् इव कान्तावियुक्ता स्यु।

पदार्थ—मधुमदकला =शहद के मद मे भिनभिनाते हुए। उपगूढा =स्नेहपूर्वक आलिगन किये गये। पादन्यास=पाँव के रखने अर्थात् आहट से। विषण्णा =व्याकुल, डरे हुए।

व्याकरण—विषण्णा =वि+सद्+क्त। वियुक्ता =वि+युज्+क्त। आसिष्यावहे=आस्(आत्म० लृट् उत्त० पु० द्वि०)।

[उभावुपविशत]

राजा—[अवलोक्य]

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेद शिलातलम्।
नून काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥४॥

चेटी—भट्टिदारिए! रुद्धा खु ह्म वय।

भर्तृदारिके! रुद्धा खलु स्मो वयम्।

पद्मावती—दिट्ठिआ उवविट्ठो अय्यउत्तो।

दिष्ट्योपविष्ट आर्यपुत्र।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] दिट्ठिआ पकिदित्थसरीरो अय्यउत्तो

दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्र

अन्वय —पुष्पाणि पादाक्रान्तानि इद शिलातल च सोष्म । नून इह आसीना काचित् मा दृष्ट्वा सहसा गता ।

पदार्थ—पादाक्रान्तानि=पैरो मे रौंदे हुए (Trampled)। सोष्म=गर्म ।

व्याकरण—पादाक्रान्तानि=पादाभ्याम् आक्रान्तानि । रुद्धा =रुध्+क्त+आ (प्रथ० वहु०)। प्रकृतिस्थशरीर =प्रकृतिस्थ शरीर यस्य स (वहुव्री०)।

नोट्—पादाक्रान्तानि आदि श्लोक श्री गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित स्वप्नवासवदत्त के प्रथम सस्करण मे, नही मिलता था। रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण मे यह श्लोक मिलता है जो भास के स्वप्नवासवदत्त नाटक से उद्धृत वतलाया गया है। कई विद्वान् इस श्लोक को अप्रामाणिक ठहराते है। काले महोदय के सस्करण मे भी यह श्लोक मिलता है।

चेटी—भट्टिदारिए ! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी।

भर्तृदारिके ! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टि ।

वासवदत्ता—एसा खु महुअराण अविणआदो कासकुसमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी।

एषा खलु मधुकराणाम् अविनयात् काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टि ।

पद्मावती—जुज्जइ। युज्यते।

विदूषकः—भो ! सुण्णं खु इद पमदवणं। पुच्छिदव्व किञ्चि अत्थि। पुच्छामि भवन्त ।

भो ! शून्य खल्विद प्रमदवनम्। प्रष्टव्य किञ्चिदस्ति। पृच्छामि भवन्तम्।

राजा—छन्दत ।

विदूषक—का भवदो पिआ—तदाणिं तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणिं पदुमावदी वा ।

का भवत प्रिया—तदानी तत्रभवती वासवदत्ता, इदानी पद्मावती वा ।

राजा—किमिदानीं भवान महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति ।

पद्मावती—हला ! जादिसे सङ्कडे निक्खित्तो अय्यउत्तो ।

हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्त आर्यपुत्र ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अह अ मन्दभाआ ।

अह च मन्दभागा ।

विदूषक—सेर सेर भणादु भव । एक्का उवरदा, अवरा असण्णिहिदा ।

स्वैर स्वैर भणतु भवान् । एकोपरता, अपरा असन्निहिता ।

राजा—वयस्य ! न खलु न खलु ब्रूयाम् । भवांस्तु मुखरः ।

पद्मावती—एत्तएण भणिद अय्यउत्तेण ।

एतावता भणितमार्यपुत्रेण ।

विदूषक—भो ! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्सं । एसा सन्दट्ठा मे जीहा ।

भो ! सत्येन शपामि, कस्मा अपि नाख्यास्ये । एषा सन्दष्टा मे जिह्वा ।

राजा—नोत्सहे सखे ! वक्तुम् ।

पद्मावती—अहो ! इमस्स पुरोभाइदा । एत्तिएण हिअअ ण जाणादि ।

अहो ! अस्य पुरोभागिता । एतावता हृदय न जानाति ।

विदूषकः—किं ण भणादि मम। अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदु। एसो रुद्धो अत्तभव।

किं न भणति मम। अनाख्यायास्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम्। एष रुद्धोऽत्रभवान्।

राजा—किं वलात्कारेण ?

विदूषकः—आम, वलक्कारेण।

आम्, वलात्कारेण।

राजा—तेन हि पश्यामस्तावद्।

विदूषकः—पसीददु पसीददु भवं। वअस्सभावेण साविदो स्मि, जइ सच्चं ण भणासि।

प्रसीदतु प्रसीदतु भवान्। वयस्यभावेन शापितोऽस्मि, यदि सत्य न भणसि।

राजा—का गतिः। श्रूयताम्—

पदार्थ—मुखरः=वाचाल, वातूनी (Talkative)

वयस्य, न खलु न खलु ब्रूयाम्=विदूषक के राजा से यह पूछने पर कि वासवदत्ता और पद्मावती मे से वह किसको अधिक चाहता है, एक विचित्र प्रकार की समस्या उपस्थित हो जाती है। यदि राजा 'वासवदत्ता को' यह कहता है तो पद्मावती के मन को ठेस लगने का डर है और यदि पद्मावती का नाम लेता है तो झूठ कहना पडता है। दूसरे वह यह भी समझता है कि वसन्तक वातूनी है, यह वात को कभी गुप्त नही रख सकेगा। इसलिए वह बताने से आनाकानी करता है।

व्याकरण—सत्येन शपामि=यहाँ सौगन्ध खाने मे तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है। पुरोभागिता=पुरोभागिन भाव। पुरोभागिन्+तल्।

सदष्टा मे जिह्वा=दूसरो को विश्वास दिलाने के लिए जिह्वा को थोडा-सा दाँतो के तले दवाते हैं। प्राय वच्चो मे ऐसा देखा जाता है।

पद्मावती वहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैं।
वासवदत्तावद्ध न तु तावन्मे मनो हरति ॥५॥

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु। दिण्ण वेदणं इमस्स परिखेदस्स। अहो! अञ्ञादवास पि एत्थ वहुगुणं सम्पज्जइ।

भवतु भवतु। दत्त वेतनमस्य परिखेदस्य। अहो! अज्ञातवासोऽप्यत्र वहुगुण सम्पद्यते।

चेटी—भट्टिदारिए! अदक्खिञ्ञो खु भट्टा।

भर्तृदारिके! अदाक्षिण्य खलु भर्ता।

व्याकरण—रूपशीलमाधुर्य्यैं=रूप च शील च माधुर्यं च तैः (द्वन्द्व) वहुमता=वहु+मन्+क्त+आ (टाप्)।

दत्त वेतन परिखेदस्य=जव वासवदत्ता ने सुना कि राजा उसको पद्मावती से भी अधिक प्रेम करता है तो वह समझती है कि अज्ञातवास के सारे कष्टो का फल उसे प्राप्त हो गया है।

अज्ञातवासो सम्पद्यते=वासवदत्ता सोचती है कि अज्ञातवास वहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। उदाहरण के तौर पर राजा के सच्चे प्रेम का विश्वास तथा राजा का पद्मावती से

विवाह जिसका परिणाम कल्याणकारक होना है इत्यादि सब बातें लाभदायक है।

पद्मावती—हला ! मा मा एव्व । सदक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि ।

हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्र, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति ।

वासवदत्ता—भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मन्तिदं ।

भद्रे ! अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम् ।

राजा—उक्तं मया । भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया—तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।

पद्मावती—अय्यउत्तो पि वसन्तओ संवुत्तो ।

आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः ।

विदूषक—किं मे विप्पलविदेण । उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ ।

किं मे विप्रलपितेन । उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते ।

अन्वय—यद्यपि पद्मावती रूपशीलमाधुर्यैः मम बहुमता, तु वासवदत्तावद्धं मे मनः तावत् न हरति ।

सदाक्षिण्य एवार्यपुत्र =राजा के वासवदत्ता की प्रशंसा करने पर चेटी कुछ चिढ जाती है और कहती है कि राजा शून्यहृदय है। पद्मावती ऐसा सुनकर 'महाराज सहृदय हैं' यह कहकर उसकी बात को काट देती है। इससे पद्मावती के ऊँचे चरित्र का परिचय मिलता है। वह अपनी सौत की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होती है।

राजा—वैधेय ! मामेव बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे ?

विदूषक—किं मं पि वलक्कारेण ? किं मामपि वलात्कारेण ?

राजा—अथकिम्, वलात्कारेण ।

विदूषक—तेण हि ण सक्क सोदु । तेन हि न शक्य श्रोतुम् ।

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मण । स्वैर स्वैरमभिधीयताम ।

विदूषक—इदाणिं सुणादु भव । तत्तहोदी वासवदत्ता मे वहुमदा । तत्तहोदी पदुमावदी तरुणी, दस्सणीआ, अकोवणा, अणहक्कारा, महुरवाआ, सदक्खिञ्ञा । अण्णं च अवरो महन्तो गुणो, सिणिद्धेण भोअणेण म पच्चुग्गच्छइ—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति ।

इदानी शृणोतु भवान् । तत्रभवती वासवदत्ता मे वहुमता । तत्रभवती पद्मावती तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहङ्कारा, मधुरवाक्, सदाक्षिण्या । अय चाऽपरो महान् गुण, स्निग्धेन भोजनेन मा प्रत्युद्गच्छति–कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति ।

वासवदत्ता—भोदु भोदु, वसन्तअ ! सुमरेहि दाणिं एद ।

भवतु भवतु, वसन्तक ! स्मरेदानीमेताम् ।

राजा—भवतु भवतु, वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै ।

विदूषक—अविहा वासवदत्ता । कहिं वासवदत्ता । चिरा खु उवरदा वासवदत्ता ।

अविहा वासवदत्ता । कुत्र वासवदत्ता । चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।

महाब्राह्मण=कई वार 'महा' शब्द का प्रयोग अपमान अथवा हँसी उत्पन्न करने के लिए भी किया जाता है। राजा यहाँ विदूषक को 'महाब्राह्मण' हँसी मे कह रहा है ।

व्याकरण—प्रति+उत्+गच्छति (स्वागत करती है)।

राजा—[सविषादम्] एवम्। उपरता वासवदत्ता। वयस्य!

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया।
ततो वाणी तथैवेय पूर्वाभ्यासेन निस्सृता ॥६॥

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिससेण विसवादिओ।

रमणीय खलु कथायोगो नृशंसेन विसवादित।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु, विस्सत्थह्मि। अहो!

पिअ णाम, ईदिसं वअणं अप्पच्चक्ख सुणीअदि।

भवतु भवतु, विश्वस्ताम्मि। अहो! प्रिय नाम, ईदृश वचनमप्रत्यक्ष श्रूयते।

विदूषक—धारेदु धारेदु भव। अणदिक्कमणीओ हि विही। ईदिस दाणि एदं।

धारयतु धारयतु भवान्। अनतिक्रमणीयो हि विधि। ईदृशमिदानीमेतत्।

राजा—वयस्य! न जानाति भवानवस्थाम। कुत,

अन्वय—त्वया अनेन परिहासेन मे मन व्याक्षिप्तम्, तत पूर्वाभ्यासेन इव वाणी तथैव निस्सृता।

पूर्वाभ्यासेन='मैं सब कुछ वासवदत्ता को कह दूंगा' ये शब्द उन्हें प्राय वासवदत्ता के जीवनकाल में कहे जाने के कारण अभ्यस्त हो गये थे।

पदार्थ—तथैव=पहले की तरह (वासवदत्ता की जीवित अवस्था में)।

व्याकरण—व्याक्षिप्तम्=वि+आ+क्षिप्+क्त। विसवादित=वि+सम्+वद्+णिच्+क्त। अनतिक्रमणीय=न अतिक्रमणीय (नञ् तत्पु०), अति+क्रम्+अनीय।

रमणीय खलु विसवादितः=इसी तरह का मिलता जुलता वाक्य 'रमणीय खलु अवधि विधिना विसवादित, (६, १२) कालिदास की शकुन्तला मे मिलता है। वहाँ पर ये शब्द कवि ने छिप कर वैठी 'सानुमती के मुख से' जो राजा और विदूषक का वार्तालाप सुन रही है, कहलवाये है। यहाँ पर भी ठीक तरह छिपकर वैठी हुई पद्मावती राजा और विदूषक की वातो को सुनकर इस प्रकार कह रही है। दोनो वाक्यो मे वहुत हद तक साम्य है।

दुःख त्यक्तु वद्धमूलोऽनुराग
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दु.ख नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह वाष्प
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥७॥

अन्वय—वद्धमूल अनुराग त्यक्तु दु खम्। स्मृत्वा स्मृत्वा दु:खम् नवत्व याति। यात्रा तु एषा यद् वुद्धि इह वाप्प विमुच्य प्राप्तानृण्या प्रसाद याति।

पदार्थ—वद्धमूल =जमी हुई जडवाला (Deep-rooted)। स्मृत्वा स्मृत्वा=वार वार याद करके। वाष्प विमुच्य=रोकर। प्राप्तानृण्या=ऋणरहित।

प्राप्तानृण्या=कहते है कि प्रत्येक मनुष्य पर अपने मृत सम्वन्धियो का ऋण होता है और जव वह उनकी याद मे रोता है तो ऋण चुक जाता है। यही कारण है कि रोने के वाद मन हल्का हो जाता है। शोक और क्षोभ की अवस्था मे रुदन से विशेप तसल्ली मिलती है। इस प्रकार का भाव उत्तर-रामचरित मे भवभूति ने भी व्यक्त किया है—

पूरोत्पीडे तडागस्य परिवाह प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदय प्रलापैरेव धार्यते॥

व्याकरण—त्यक्तुम्=त्यज्+तुमुन्। विमुच्य=वि+मुच्+ल्यप्। प्राप्तानृण्या=प्राप्तम् आनृण्य यया सा (वहुव्री०)। प्रसादम्=प्र+सद्+घञ्।

विदूषक—अस्सुपादकिलिण्ण खु तत्तहोदो मुहं। जाव मुहोदअं आणेमि। [निष्क्रान्त]

अश्रुपातक्लिन्न खलु तत्रभवतो मुखम्। यावन्मुखोदकमानयामि।

पद्मावती—अय्ये! वप्फाउलपडन्तरिद अय्यउत्तस्स मुहं। जाव णिक्कमह्य।

आर्ये! वाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम्। यावन्निष्क्रामाम।

वासवदत्ता—एव्वं होदु। अहव चिट्ठ तुवं। उक्कण्ठिद भत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमणं। अह एव्व गमिस्स।

एव भवतु। अथवा तिष्ठ त्वम्। उत्कण्ठित भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्त निर्गमनम्। अहमेव गमिष्यामि।

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि। उपसप्पदु दाव भट्टिदारिआ।
सुष्ठ्वार्या भणति। उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका।

पद्मावती—किं णु खु पविसामि? किं नु खलु प्रविशामि?

वासवदत्ता—हला! पविस। [इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता]
हला! प्रविश।

[प्रविश्य]

विदूषकः—(नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा)।
एसा तत्तहोदी पदुमावदी।

एषा तत्रभवती पद्मावती।

पद्मावती—अय्य वसन्तअ ! किं एद ?

आर्य वसन्तक ! किमेतत् ?

विदूषक —एद इद । इद एदं ।

एतदिदम् । इदमेतत् ।

व्याकरण—अश्रुपातक्लिन्नम्=अश्रूणा पात (ष० तत्पु०) तेन क्लिन्नम् (तृ० तत्पु०) । क्लिन्नम्=क्लिद्+क्त । वाष्पाकुल-पटान्तरितम्=वाष्पैं आकुलम् (तृ० तत्पु०) । अतएव पटेन अन्तरितम् (तृ० तत्पु०) । उत्कण्ठितम्=उत्कण्ठा जाता अस्य तम् । उत्कण्ठा+इतच् ।

पटान्तरितम्=राजा का मुख आँसुओ से भर गया था और वह सोचकर कि कही कोई देख न ले, उसने अपना मुख वस्त्र से ढक लिया था ।

एतदिदम्=पद्मावती के अकस्मात् आ जाने से विदूषक चकरा जाता है और कुछ कह नही सकता ।

पद्मावती—भणादु भणादु अय्यो भणादु ।

भणतु भणत्वार्यो भणतु ।

विदूषकः—भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिप-डिदेण सस्सुपाद खु तत्तहोदो मुह । ता गह्णदु होदी इद मुहोदअ ।

भवति ! वातनीतेन कासकुसुमरेणुनाक्षिनिपतितेन साश्रुपात खलु तत्रभवतो मुखम् । तद् गृह्णातु भवतीद मुखोदकम् ।

पद्मावती—[आत्मगतम्] अहो ! सदक्खिण्णस्स जणस्स परिजणो वि सदक्खिण्णो एव्व होदि । [उपेत्य] जेदु अय्य-उत्तो । एद मुहोदअ ।

अहो ! सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति । जयत्वार्यपुत्र । इद मुखोदकम् ।

राजा—अये ! पद्मावती । [अपवार्य] वसन्तक ! किमिदम् ?

विदूषकः—[कर्णे] एव्व विअ ।

एवमिव ।

राजा—साधु वसन्तक ! साधु । [आचम्य] पद्मावति ! आस्यताम् ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [उपविशति]

यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

सदाक्षिण्यस्य जनस्य एव भवति=पद्मावती के अकस्मात् आ जाने से विदूषक किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है (सटपटा जाता है)। थोडी देर के लिए उसके मुख से बात निकलनी भी बन्द हो जाती है। परन्तु जब वह शीघ्र ही अपने-आपको सँभालकर और पद्मावती को यह कहकर कि राजा की आँखो मे धूलि पडने से आँसू आ गये है, टालना चाहता है, तब पद्मावती अपने मन मे सोचती है कि चतुर मनुष्यो के सेवक भी चतुर ही होते है।

अपवारित=यह नाटकीय शब्द है। एक पात्र जब दूसरे पात्र से इस प्रकार बात करे कि केवल वही पुरुष सुन सके जिसे वह पात्र सुनाना चाहता हो तो इस ढग के कथन को 'अपवारित' कहते हैं। इसका अर्थ 'एक ओर' है। इसका लक्षण 'रहस्य कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्'।

व्याकरण—मुखोदकम्=मुखस्य उदकम् (ष० तत्पु०)।

राजा—पद्मावति !

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ! ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥८॥

अन्वय—भामिनि ! शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इद मम मुख साश्रुपातम् अस्ति ।

पदार्थ—वाताविद्धेन=वायु से फेंके हुए । काशपुष्पलवेन=काम के फूलो की धूलि से ।

व्याकरण—शरच्छशाङ्कगौरेण=शरद गशाङ्क (ष० तत्पु०) स इव गौर (उपमान तत्पु०) तेन । वाताविद्धेन=वातेन आविद्ध (तृ० तत्पु०) तेन । आविद्ध =आ+व्यव्+क्त (कर्मणि) ।

[आत्मगतम्]

इय बाला नवोद्वाहा सत्य श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
काम धीरस्वभावेय स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥६॥

विदूषक.—उइद तत्तहोदो मअधराअस्स अवरह्णकाले भवन्त अग्गदो करिअ सुहिज्जणदसण । सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिदो पीर्दि उप्पादेदि । ता उट्ठेदु दाव भव ।

उचित तत्रभवतो मगधराजस्यापराह्णकाले भवन्तमग्रत कृत्वा सुहृज्जनदर्शनम् । सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीप्ट प्रीतिमुत्पादयति । तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान् ।

अन्वय—इय नवोद्वाहा बाला सत्य श्रुत्वा व्यथा व्रजेत् । काम इयं धीरस्वभावा तु स्त्रीस्वभाव कातर ।

पदार्थ—नवोद्वाहा=नवविवाहिता । कामम्=माना कि ।

व्याकरण—नवोद्वाहा=नव उद्वाह यस्या सा (बहुव्री०) । प्रतीष्टा=प्रति+इष्+क्त (स्वीकार करना)

बाला=सोलह वर्ष के लगभग आयु वाली युवती को 'बाला' कहते हैं, क्योंकि उसमे सासारिक अनुभव की अभी कमी होती है ।

स्त्रीस्वभावस्तु कातर = स्त्रियो का स्वभाव प्राय भीरु होता है।

राजा समझता है कि स्त्रियो के लिए यह सहन करना कि उनका पति उनकी सौत से अधिक प्रेम करता है, बड़ा कठिन है इसलिए वह नही चाहता कि आँखो मे आँसू आने का ठीक कारण बता कर पद्मावती को व्यर्थ मे दुखी करे।

राजा—बाढम्। प्रथमः कल्प.। [उत्थाय]

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यश।
कर्तार सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥१०॥

[निष्क्रान्ता सर्वे]

अन्वय—विशालाना गुणाना वा (विशालानाम्) सत्काराणा च नित्यश कर्तार लोके सुलभा सन्ति। तु विज्ञातार दुर्लभा सन्ति।

व्याकरण—नित्यश = नित्य + शस् (अव्यय) विज्ञातार = विज्ञातृ प्रथ० बहुवचन।

चतुर्थोऽङ्क।

अथ पञ्चमोऽङ्कः

[तत प्रविशति पद्मिनिका]

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्घं।

मधुकरिके ! मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् !

[प्रविश्य]

मधुकरिका—हला ! इअह्मि। किं करीअदु ?

हला ! इयमस्मि। किं क्रियताम् ?

पद्मिनिका—हला ! किं ण जाणासि तुव भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदेत्ति ।

हला ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।

मधुकरिका—हद्धि ।   हा ! धिक् ।

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घ, अय्य आवन्तिअं सद्दावेहि । केवल भट्टिदारिआए सीसवेदणं एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि ।

हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामावन्तिकां शब्दापय । केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । ततः स्वयमेवागमिष्यति ।

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ?

हला ! किं सा करिष्यति ?

पद्मिनिका—सा हु दाणिं महुराहिं कहाहिं भट्टिदारिआए सीसवेदणं विणोदेदि ।

सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति ।

मधुकरिका—जुज्जइ । कहिं सअणीयं रइदं भट्टिदारिआए ?

युज्यते । कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?

पद्मिनिका=अन्तःपुर की एक दासी का नाम। मधुकरिका और पद्मिनिका पद्मावती की दासियाँ थी।

व्याकरण—दुःखिता=दुःखम् अस्याः सञ्जातम् । दुःख+इतच्+आ । विनोदयति=वि+नुद्+णिच्+लट् (प्रथ० पु० एकवचन) आस्तीर्णा=आ+स्तृ+क्त+आ । देवीवियोगविधुर-

हृदयस्य=देव्या. वियोग (प० तत्पु०) तेन विधुर हृदय यस्य (बहुव्री०)। (विधुर=विगता धू यस्य स. बहुव्री०)।

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा । गच्छ दाणि तुव । अह वि भट्टिणो णिवेदणत्थ अग्यवसन्तअ अण्णेसामि ।

समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । गच्छेदानी त्वम् । अहमपि भर्त्रे निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।

मधुकरिका—एव्व होदु । [निष्क्रान्ता]

एव भवतु ।

पद्मिनिका—कहिं दाणि अग्यवसन्तअ पेक्खामि ।

कुत्रेदानीमार्यवसन्तक पश्यामि ।

[तत प्रविशति विदूषक]

विदूषक.—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स पदुमावदीपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुहावहे मङ्गलोसवे मदणग्गिदाहो अहिअदर वड्ढइ । [पद्मिनिका विलोक्य] अयि ! पदुमिणिआ । पदुमिणिए ! कि इह वत्तदि ।

अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतर वर्धते । अयि ! पद्मिनिका । पद्मिनिके ! किमिह वर्तते ?

पद्मिनिका—अग्य वसन्तअ ! किं ण जाणासि तुव भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदेत्ति ।

आर्य वसन्तक ! किं न जानासि त्व भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दु खितेति ।

विदूषक—भोदि ! सच्चं, ण जाणामि । भवति ! सत्यम्, न जानामि ।

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि ।

तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम् । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।

विदूषक—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ?

कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्या ?

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा ।

समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।

विदूषक—गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं ।

गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि ।

[निष्क्रान्तौ]

प्रवेशकः ।

समुद्रगृहक=फुव्वारे इत्यादि से युक्त सुन्दर कमरा जहाँ गर्मी मे बैठते हैं । यह कमरा अन्तःपुर मे रानियो के मनोविनोद के लिए तथा थकावट दूर करने के लिए होता है ।

पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्य=यहाँ पद्मावती के विवाह को वायु का रूप दिया गया है । अभिप्राय यह है कि राजा उदयन की वियोग-रूपी अग्नि को भडकाने के लिए पद्मावती के विवाह ने मानो वायु का काम किया हो ।

प्रवेशक=इससे नाटक के दो साथवाले अङ्को का परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, यह सम्बन्ध छोटी स्थिति के पात्रो द्वारा स्थापित होता है । जो प्राकृत मे बातचीत करते हैं ।

[ततः प्रविशति राजा]

राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।
लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥१॥

[प्रविश्य]

विदूषकः—तुवरदु तुवरदु दाव भवं।

त्वरतां त्वरतां तावद् भवान् ।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदा।

तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता ।

राजा—कैवमाह ?

विदूषकः—पदुमिणिआए कहिदं। पद्मिनिकया कथितम् ।

अन्वय.—कालक्रमेण पुनरागतदारभारः, हिमहताम् पद्मिनीम् इव, लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिम् अवन्तिनृपतेः सदृशीं श्लाघ्यां तां तनूजां चिन्तयामि ।

पदार्थ—पुनरागतदारभारः=जिसने फिर दूसरा विवाह कर लिया है। लावाणके=लावाणक नाम वाले ग्राम में। हुतवहेन=अग्नि से। हृताङ्गयष्टिम्=जले हुए कोमल (छरहरे) शरीर वाली (को)। श्लाघ्याम्=प्रशंसा के योग्य। तनूजाम्=पुत्री को।

पुनरागतदारभारः='भार' शब्द के प्रयोग से पता लगता है कि राजा ने अपनी इच्छा से विवाह नहीं किया था। परिस्थितियों से विवश होकर ही उसे ऐसा करना पड़ा था।

पद्मिनी हिमहतामिव=राजा के विचार मे वासवदत्ता इस प्रकार लावाणक की अग्नि मे नष्ट हुई है, जिस प्रकार वर्फ से कमलिनी होती है। मेघदूत मे यक्ष भी अपनी वियोगतप्ता प्रियतमा की तुलना कमलिनी से करता है। जिस प्रकार वर्फ से कमलिनी तहस-नहस हो जाती है उसी प्रकार उसकी वियोगिनी की अवस्था है—

'जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनी वान्यरूपाम्'।

व्याकरण—पुनरागतदारभार =पुन आगत दारभारः यस्य (वहुव्री०)। दाराणा भार (ष० तत्पु०)। 'दार' शब्द सदा पुँल्लिङ्ग बहुवचन मे प्रयुक्त होता है। श्लाघ्यम्=श्लाघ्+ण्यत्+टाप्। हुतवहेन=हुतस्य वह (प० तत्पु०) तेन। हृताङ्गयष्टिम्=हृता अङ्गयष्टि यस्या ताम् (वहुव्री०)। हिमहताम्=हिमेन हता ताम् (ष० तत्पु०)।

राजा—भोः! कष्टम्।

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःख.
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥२॥

विदूषकः—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा।
समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।

राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय।

विदूषकः—एदु एदु भव। [उभौ परिक्रामत.]
एतु एतु भवान्।

विदूषक,—इद समुद्दगिहक। पविसदु भव।
इद समुद्रगृहकम्। प्रविशतु भवान्।

राजा—पूर्वं प्रविश।

विदूषकः—भो ! तह। [प्रविश्य] अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं।

भो ! तथा। अविहा ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान्।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—एसो खु दीवप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अअं काओदरो।

एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानोऽयं काकोदरः।

अन्वय.—रूपश्रिया समुदिता गुणतः युक्ता च प्रिया लब्ध्वा अद्य पूर्वाभिघातसरुज अपि मम शोकः तु मन्द एव (अभूत्)। अनुभूतदुःख पद्मावतीम् अपि तथा एव समर्थयामि।

पदार्थ—समुदिताम्=युक्त, पूर्ण। पूर्वाभिघातसरुजः=पहली चोट से पीड़ित। अनुभूतदुःख =दुःख का अनुभव करने वाला। समर्थयामि =समझता हूँ।

व्याकरण—समुदिताम्=सम्+उद्+इ+क्त+टाप्। पूर्वाभिघातसरुज =पूर्वः य आघात तेन सरुज (तृ० तत्पु०)। रुजा सह वर्तमान. सरुक्, तस्य सरुज , ष० एक वचन (यह मम का विशेषण है)। अभिघात=अभि+हन्+घञ्। अनुभूतदुःख =अनुभूत दुःखं येन स (बहुव्री०)। समर्थयामि=सम्+अर्थ+णिच् (लट् उत्त० पु० एक वच०)। व्याकरण के अनुसार 'समर्थयामि' के स्थान पर 'समर्थये' होना चाहिए। काकोदर =काकस्योदरमिति काकोदरम्, काकोदरमिव उदर यस्य। व्यक्ति =वि+अञ्ज्+क्तिन्।

पूर्वाभिघात='पहली चोट' से यहाँ वासवदत्ता की मृत्यु से अभिप्राय है। पद्मावती . समर्थयामि=राजा समझता है कि जिस प्रकार वासवदत्ता मर गई है उसी तरह पद्मावती भी मर जायगी।

राजा—[प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्] अहो! सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख! सर्पम्।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥३॥

विदूषकः—[निरूप्य] सुट्ठु भवं भणादि। ण हु अअं काओदरो। [प्रविश्यावलोक्य] तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे।

सुष्ठु भवान् भणति। न खल्वयं काकोदर। तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।

अन्वय—मूर्ख, त्व क्षितौ भ्रष्टा ऋज्वायता मुखतोरणलोलमाला हि सर्पम् अवगच्छसि। या निशि मन्दानिलेन परिवर्तमाना किञ्चित् भुजगस्य विचेष्टितानि करोति।

पदार्थ—परिवर्तमाना=हिलती हुई। भुजगस्य=साँप की। ऋज्वायताम्=सीधी और लम्बी। भ्रष्टाम्=गिरी हुई। मुखतोरण-लोलमालाम्=मुख्य द्वार के महराव की चञ्चल माला। विचेष्टितानि=चेष्टाएँ (Movements)।

व्याकरण—ऋज्वायता=ऋजु चासौ आयता (कर्मधा०)। मुखतोरणलोलमाला=मुखतोरणे लोलमाला (सप्तमी तत्पु०)। लोला माला, लोलमाला (कर्मधारय)। मन्दानिलेन=मन्द अनिल (कर्मधा०) तेन। भुजगस्य=भुज (कुटिल), यथा

न्यान्यथा गच्छतीति भुजग, तस्य। परिवर्तमाना=परि+वृत् +शानच्+आ।

राजा—वयस्य! अनागतया भवितव्यम्।

विदूषक—कहं भव जाणादि? कथं भवान् जानाति?

राजा—किमत्र ज्ञेयम्। पश्य,

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥४॥

अन्वय—शय्या न अवनता, तथा आस्तृतसमा। न व्याकुलप्रच्छदा, शिरोपधानम् अमलं, शीर्षाभिघातौषधैः न हि क्लिष्टम्। रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं काचित् शोभा न कृता, प्राणी रुजा शयनं प्राप्य पुनः शीघ्रं स्वयं न मुञ्चति।

पदार्थ—अवनता=दबी हुई। आस्तृता=बिछी हुई। प्रच्छदा= ऊपर वाली चादर। अमलम्=साफ। शिरोपधानम्=तकिया। शीर्षाभिघातौषधैः=सिरदर्द की दवाओं से। दृष्टिविलोभनम्=आँखों को लुभाना।

व्याकरण—अवनता=अव+नम्+क्त+आ। आस्तृतसमा =आस्तृता चासौ समा च (कर्मधा०)। शिरोपधानम्=शिरसः उपधानम् (ष० तत्पु०) यहाँ सन्धि आर्ष हुई है। शीर्षाभिघातौषधैः=शीर्षस्य अभिघातः (ष० तत्पु०) तस्य औषधैः। क्लिष्टम् =क्लिश्+क्त। जनयितुम्=जन्+णिच्+तुम्। व्याकुलप्रच्छदा =व्याकुलः प्रच्छदः यस्याः सा (बहुव्री०)। दृष्टिविलोभनम्= दृष्ट्योः विलोभनम् (ष० तत्पु०)।

विदूषक—तेण हि इमस्सि सय्याए मुहुत्तअ उवविसिय तत्तहोदि पडिवालेदु भवं।

तेन ह्यस्या शय्याया मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवती प्रतिपालयतु भवान्।

राजा—बाढम्। [उपविश्य] वयस्य! निद्रा मां बाधते। कथ्यतां काचित कथा।

विदूषक—अहं कहइस्सं। होँ त्ति करेदु अत्तभवं।

अह कथयिष्यामि। होँ इति करोत्वत्रभवान्।

राजा—बाढम्।

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम। तहिं अहिअरमणीआणि उदअह्णाणाणि वत्तन्ति किल।

अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम। तत्र अधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल।

राजा—कथमुज्जयिनी नाम।

विदूषक—जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्ण कहइस्सं।

यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्या कथयिष्यामि।

होँ=हुकारा भरना। जब कोई कहानी सुना रहा हो तो सुनने वाला यह दिखाने के लिए कि वह ध्यानपूर्वक सुन रहा है प्राय 'हुँ-हुँ' करता है। विदूषक भी चाहता है कि कहानी सुनते-सुनते राजा 'हुँ-हुँ' करता रहे।

व्याकरण—उदकस्नानानि=उदके स्नानानि (सप्तमी तत्पु०) अनभिप्रेता=न अभिप्रेता (नञ् तत्पु०)।

राजा—वयस्य! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा। किन्तु,

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥५॥

अन्वय—प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्या स्नेहात् प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं बाष्पं मम एव उरसि पातयन्त्या अवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि।

पदार्थ—प्रस्थानकाले=(अपनी जन्मभूमि उज्जयिनी से) चलते समय। नयनान्तलग्नम्=आँखों की कोर में लगे हुए। उरसि=छाती पर।

व्याकरण—स्मरन्त्या =स्मृ+शतृ+ङीप् (षष्ठी एक वचन) लग्नम्=लस्ज्+क्त। अवन्त्याधिपतेः =अवन्त्याः अधिपतिः (ष० तत्पु०) तस्य। 'अवन्त्याधिपति' रूप शुद्ध नहीं, 'अवन्त्यधिपति' होना चाहिए। अवन्त्याः+अधिपतिः में विसर्ग का लोप हो जाने से सन्धि नहीं हो सकती।

अपि च,

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥६॥

विदूषकः—भोदु, अण्णं कहइस्सं। अत्थि णअरं बह्मदत्तं णाम। तहिं किल राआ कम्पिल्लो णाम।

भवतु, अन्यां कथयिष्यामि। अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम। तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम।

राजा—किमिति किमिति?

विदूषकः—[पुनस्तदेव पठति]

राजा—मूर्ख! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम्।

विदूषकः—किं राआ बह्मदत्तो, णअरं कम्पिल्लं?

किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम्?

राजा—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअ पडिवालेदु भव, जाव ओट्ठगअ करिस्स । राआ बह्मदत्तो, णअर कपिल्लं । [इति बहुशस्तदेव पठित्वा] इदाणिं सुणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभव । अदिसीदला इअ वेला । अत्तणो पावरअ गह्णिअ आअमिस्स । [निष्क्रान्त]

तेन हि मुहूर्तक प्रतिपालयतु भवान्, यावद् ओष्ठगत करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्त , नगर काम्पिल्यम् । इदानी शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्रभवान् । अतिशीतलेय वेला । आत्मन प्रावारक गृहीत्वागमिष्यामि ।

अन्वय—माम् ईक्षमाणया यया बहुश अपि उपदेशेषु स्रस्तकोणेन हस्तेन आकाशवादितम् कृतम् ।

पदार्थ—उपदेशेषु=वीणा सिखाने मे । स्रस्तकोणेन=जिससे कोण (वीणा की छडी) गिर गया हो । आकाशवादितम्=हवा मे वजाना (Air beating) ।

व्याकरण—ईक्षमाणया=ईक्ष्+शानच्+आ (तृ० एक वचन) । स्रस्तकोणेन=स्रस्त कोण यस्मात् स, तेन (बहुव्री०) । (स्रस्+क्त) । आकाशवादितम्=आकाशे वादितम् (सप्त० तत्पु०) ।

[तत प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण चेटी च]

चेटी—एदु एदु अय्या ! दिढ खु भट्टिदारिआ सीसवेदणाए । दुक्खाविदा ।

एतु एतु आर्या दृढ खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दु खिता ।

वासवदत्ता—हद्धि, कहिं सअणीअ रइद पदुमावदीए ।

हा ! धिक्, कुत्र शयनीय रचित पद्मावत्या ।

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिएणा ।

समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि ।

तेन ह्यग्रतो याहि ।

[उभे परिक्रामत]

चेटी—इद समुद्दगिहकं । पविसदु अय्या । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि । [निष्क्रान्ता]

इद समुद्रगृहकम् । प्रविशत्वार्या । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।

वासवदत्ता—अहो अकरुणा खु इस्सरा मे । विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्स विस्समत्थाणभूदा इअं पि णाम पदुमावदी अस्सत्था जादा । जाव पविसामि । [प्रविश्यावलोक्य] अहो ! परिजणस्स पमादो । अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि । इअं पदुमावदी ओसुत्ता । जाव उवविसामि । अहव अण्णासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि । ता इमस्सिं सय्याए उवविसामि [उपविश्य] किं णु खु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं । दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा । णिव्वुत्तरोआए होदव्वं । अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सूएदि म आलिङ्गेहि त्ति । जाव सइस्सं । [शयनं नाटयति]

अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे । विरहपर्युत्सुकस्यार्य-पुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता ।

यावत् प्रविशामि । अहो ! परिजनस्य प्रमाद । अस्वस्था पद्मावती केवल दीपसहाया कृत्वा परित्यजति । इय पद्मावत्यवसुप्ता । यावदुपविशामि । अथवा अन्यासन-परिग्रहेणाल्प इव स्नेह प्रतिभाति । तदस्या शय्याया-मुपविशामि । किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । दिष्ट्याविच्छिन्नसुखनि श्वासा । निवृत्तरोगया भवितव्यम् । अथवैकदेशनविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति । यावच्छयिष्ये ।

राजा—[स्वप्नायते] हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—[सहसोत्थाय] हं, अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी । किं णु खु दिट्ठह्मि । महन्तो खु अय्यजोअन्ध-राअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फलो संवुत्तो ।

हम्, आर्यपुत्र, न खलु पद्मावती । किं नु खलु दृष्टास्मि । महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फल संवृत्त ।

राजा—हा अवन्तिराजपुत्रि !

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो । ण एत्थ कोवि जणो जाव मुहुत्तअं चिट्ठिअ दिट्ठिं हिअअं च तोसेमि ।

दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्र । नात्र कश्चिज्जन । यावन्मुहूर्तक स्थित्वा दृष्टिं हृदय च तोषयामि ।

पदार्थ—ओष्ठगत करोमि=जवान पर चढ़ा लूं ।

व्याकरण=प्रावारकम्=प्राव्रियते अनेन इति । अकरुणा=अविद्यमाना करुणा येषा ते (बहुव्री०) । दीपसहायाम्=दीप

एव सहाय यस्या सा (बहुव्रो०) ताम् । अविच्छिन्नसुखनि'-श्वासा=न विच्छिन्न. (नञ् तत्पु०) अविच्छिन्न चासौ सुख च (कर्मधा०), अविच्छिन्नसुख निश्वास यस्या सा (बहुव्रो०)। निवृत्तरोगया=निवृत्त रोग यस्या सा (बहुव्रो०)।

राजा—हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम्।

वासवदत्ता—आलवामि भट्टा ! आलवामि !

आलपामि भर्त ! आलपामि !

राजा—किं कुपितासि ?

वासवदत्ता—ण हि ण हि, दुःखिदाम्हि। नहि नहि, दुःखितास्मि।

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि ?

वासवदत्ता—इदो वर किं ? इत पर किम् ?

राजा—किं विरचिकां स्मरसि ?

वासवदत्ता—[सरोषम्] आ ! अवेहि, इहावि विरचिआ।

आ ! अपेहि, इहापि विरचिका।

राजा—तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि। [हस्तौ प्रसारयति]

वासवदत्ता—चिर ठिदम्हि। को वि म पेक्खे। ता गमिस्सं। अहव, सय्यापलम्बिअ अय्यउत्तस्स हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्स्सं। [तथा कृत्वा निष्क्रान्ता]

चिर स्थितास्मि। कोऽपि मा पश्येत्। तद् गमिष्यामि। अथवा, शय्याप्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्त शयनीय आरोप्य गमिष्यामि।

विरचिका=राजा के अन्त पुर की एक दासी का नाम है। उससे वह प्रेम करता था। एक दिन राजा ने वासवदत्ता को

विरचिका कहकर पुकारा था। इस पर वासवदत्ता नाराज़ हो गई थी। राजा को स्वप्न मे वही घटना याद आ रही है।

राजा—[सहसोत्थाय] वासवदत्ते ! तिष्ठ तिष्ठ। हा ! धिक्।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडित।
ततो व्यक्त न जानामि भूतार्थोऽय मनोरथ ॥७॥

अन्वय —सम्भ्रमेण निष्क्रामन् अह द्वारपक्षेण ताडित। तत अयं मनोरथ वा इति व्यक्त न जानामि।

पदार्थ—सम्भ्रमेण=एकाएक, अचानक। द्वारपक्षेण=किवाड से ('Penal of the door)। व्यक्तम्=साफ।

व्याकरण-निष्क्रामन्=निस्+क्रम्+शतृ (प्रथ० एक वचन)। भूतार्थ =भूत चासौ अर्थश्च (कर्मधा०)। व्यक्तम्=वि+अञ्ज्+क्त।

राजा ने वासवदत्ता को देखा तो अवश्य था परन्तु किवाड से टकरा जाने के कारण वह साफ देख नही सका था। इसी से नाटककार के चातुर्य्य का पता लगता है। यदि इसी समय वासवदत्ता का रहस्य खुल जाता तो कई प्रकार की उलझनें (Complications) पड जाती। दर्शक भी समझने लगता कि उससे सैनिक सहायता लेने के लिए राजा ने यह षड्यन्त्र रचा है। अथवा सम्भव था राजा वासवदत्ता को चरित्रहीना समझने लगता और इसका परिणाम भयकर होता।

[प्रविश्य]

विदूषकः—अयि ! पडिवुद्धो अत्तभव। अयि ! प्रतिवुद्धोऽत्रभवान्।

राजा—वयस्य ! प्रियमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता ।

अविहा वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।

व्याकरण—धरते=धृञ् । यह सकर्मक धातु है । यहाँ कर्म (प्राणान्) अन्तर्हित (Understood) है । अन्यथा यह प्रयोग शुद्ध नहीं माना जा सकता । वस्तुत कवि ने तुदादिगण की धृङ् धातु का रूप शप् विकरण से दिया है । इस प्रकार का व्यतिक्रम प्राचीन कवियों में बहुधा देखा जाता है ।

राजा—वयस्य ! मा मैवम् ।

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥८॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं । आ, उदअण्हाण-सङ्कित्तणेण तत्तहोदिं चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्ठा भवे ।

अविहा ! असम्भावनीयमेतत् । आ, उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।

अन्वय—सखे, शय्यायाम् अवसुप्तं मां बोधयित्वा गता । पूर्वं दग्धा इति ब्रुवता रुमण्वता वञ्चितः अस्मि ।

पदार्थ—बोधयित्वा—जगा कर । वञ्चितः=ठगा गया ।

व्याकरण—अवसुप्तम्—अव+स्वप्+क्त (द्वितीया एक वचन)। बोधयित्वा—बुध्+णिच्+क्त्वा । वञ्चित—वञ्च्+क्त । ब्रुवता—ब्रू+शतृ (तृतीया एक वचन) ।

अवसुप्तम्=अव का अर्थ 'अच्छा' है । ऐसा ही 'अव' का अर्थ अवतंगित में पाया जाता है । सर्वनिद्रित सा अथवा प्रगाढ

निद्रित अर्थ ही यहाँ जँचता है, क्योंकि स्वप्न भी तो ऐसी निद्रा मे आया करते है ।

आ =भूली हुई बात याद करते समय प्राय इसका प्रयोग होता है ।

राजा—एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ।

यदि तावदय स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथाय विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥९॥

विदूषक—भो वअस्स । एदस्सिं णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम जक्खिणी पडिवसदि । सा तुए दिट्ठा भवे ।

भो वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति । सा त्वया दृष्टा भवेत् ।

अन्वय—यदि तावत् अय स्वप्न, अप्रतिबोधन धन्यम् । अथ अय विभ्रम वा स्यात् । मे विभ्रम हि चिरम् अस्तु ।

पदार्थ—अप्रतिबोधनम्=न जागना । विभ्रम =बुद्धि मे भ्रम (illusion) ।

व्याकरण—अप्रतिबोधनम्=प्रति+बुध्+ल्युट् (भावे), न प्रतिबोधनम् ।

विभ्रम =मन के विचारो के आधार पर कल्पना को सत्य मान लेना विभ्रम कहलाता है । इसमे मनुष्य सत्यासत्य का निर्णय नही कर सकता ।

राजा—न न,

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥१०॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य—

अन्वय —स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन मया चारित्र्यम् अपि रक्षन्त्या नेत्रविप्रोषिताञ्जन दीर्घालक मुख दृष्टम् ।

पदार्थ—नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्=जिन आँखों से काजल निकल चुका है। दीर्घालकम्=लम्बे बालों वाले ।

व्याकरण—नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्=नेत्राभ्यां विप्रोषितम् (पञ्च० तत्पु०), नेत्रविप्रोषितम् अञ्जनं यस्मिन् मुखे तन्मुखम् (बहुव्री०)। दीर्घालकम्=दीर्घा अलका यस्मिन् तन्मुखम् (बहुव्री०) ।

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥११॥

विदूषक—मा दाणिं भवं अणत्थं चिन्तिअ । एदु एदु भवं । चउस्सालं पविस्सामो ।

मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा । एत्वेतु भवान् । चतुःशालं प्रविशाव ।

अन्वय —यः अयं बाहुः सन्त्रस्तया तया देव्या निपीडितः । स्वप्ने अपि उत्पन्नसंस्पर्शः रोमहर्षं न मुञ्चति ।

पदार्थ—निपीडित =दबाया । रोमहर्षम्=रोमाञ्च को ।

व्याकरण—सन्त्रस्तया =सम्+त्रस्+क्त +आ (तृ० एक वचन)। उत्पन्नसंस्पर्श = उत्पन्नः संस्पर्शः यस्य (बहुव्री०) । रोमहर्षम् = रोम्णां हर्षं त (ष० तत्पु०) । मा चिन्तयित्वा 'अलम्' की देखादेखी भास द्वारा ऐसा प्रयोग हुआ प्रतीत होता है । 'मा' के साथ क्त्वा का प्रयोग नियम-विरुद्ध है ।

रोमहर्षं ... स्वप्न में से आठ सात्त्विक भावों में से एक ।

[प्रविश्य]

काञ्चुकीय —जयत्वार्यपुत्र । अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह—एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदयेनोपयात खल्वारुणिमभिघातयितुम् । तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि । तदुत्तिष्ठतु भवान । अपि च,

आरुणी=उदयन के शत्रु का नाम है। इसने राजा के राज्य का बहुत-सा प्रान्त छीन लिया था। इसी को हराने के लिए ही मगधराज की सहायता आवश्यक समझी गई थी।

व्याकरण—अभिघातयितुम्=अभि+हन्+णिच्+तुमुन् । हस्त्यश्वरथपदातीनि=हस्तिनश्च अश्वाश्च रथाश्च पदातयश्च एतेषा समाहार हस्त्यश्वरथपदाति, तदेषामस्तीति हस्त्यश्वरथपदातीनि (द्वन्द्व)। ऐसा विग्रह करने से इकारान्त द्वन्द्व से परे इनि प्रत्यय दुर्लभ है। इसलिए यह चिन्त्य है। हस्तिनश्च अश्वाश्च रथाश्च इति हस्त्यश्वरथम्, हस्त्यश्वरथेन युक्ता इति हस्त्यश्वरथयुक्ता पदातयो यत्र तानि (मध्यमपदलोपी०)। मामकानि =मम इमानि इति अस्मद्+कन्। विजयाङ्गानि=विजयस्य अङ्गानि (ष० तत्पु०)। सन्नद्धानि=सम्+नह्+क्त।

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरता पौरा. समाश्वासिता.,
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधान कृतम् ।
यद् यत् साध्यमरिप्रमाथजनन तत् तन्मयानुष्ठित ,
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

अन्वय —ते रिपव भिन्ना, भवद्गुणरता पौरा समाश्वासिता.। भवत्प्रयाणसमये या अपि पार्ष्णी तस्या विधान कृतम्। अरिप्रमाथजनन

तव यत् साध्य तत् तत् मया अनुष्ठितम्। वत्सै च त्रिपथगा नदी अपि तीर्णा। च वत्सा तव हस्ते।

पदार्थ—भिन्ना=फूट डाल दी है। (the policy of divide and rule) पार्ष्णी=सेना का पिछला भाग। अरिप्रमाथजननम्=शत्रु का नाश करने वाले। अनुष्ठितम्=कर लिया है। वत्सा=वत्स नामक देश। त्रिपथगा=गङ्गा।

व्याकरण—भिन्ना=भिद्+क्त (प्रथ० बहुवचन)। रता=रम्+क्त (प्रथ० बहुवचन)। पौरा=पुरि भवा पुर+अण्। अरिप्रमाथजननम्=अरे प्रमाथ (ष० तत्पु०) तस्य जननम् (ष० तत्पु०)। अनुष्ठितम्=अनु+स्था+क्त। त्रिपथगा=त्रयाणां पथां समाहार त्रिपथम्, तेन गच्छतीति त्रिपथगा। तीर्णा=तृ+क्त+आ। वत्सा=देशवाचक शब्द बहुवचन होते हैं।

त्रिपथगा=तीनों लोकों-स्वर्ग, मर्त्य और पाताल-में बहने के कारण इसको त्रिपथगा कहा गया है। जैसा कि कहा है —

स्वर्गे मन्दाकिनी गङ्गा, मर्त्ये भागीरथी तथा।
पाताले च भोगवती, मार्गास्तस्या त्रयो मता॥

राजा—[उत्थाय] हाटम्। अयमिदानीम्,

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम्।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि॥

[निष्क्रान्ता सर्वे]

अन्वयः—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि दारुणकर्मदक्षम् तम् आरुणिम् उपेत्य नाशयामि।

पदार्थ—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे=जिसमे हाथी घोडे चल रहे हो। विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे=जहाँ पर चलाये हुए वाण भयानक लहरो के टुकडो की तरह हो। महार्णवाभे=समुद्र के समान।

व्याकरण—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे=नागेषु इन्द्रा नागेन्द्रा.। नागेन्द्राश्च तुरङ्गाश्च नागेन्द्रतुरङ्गम् (द्वन्द्व)। नागेन्द्रतुरङ्गेण तीर्ण (तृ० तत्पु०) तस्मिन्। विकीर्णवाणोग्रतरभङ्गे=उग्रा तरङ्गा (कर्मधा०) तेषा भङ्गा, उग्रतरङ्गभङ्गा (ष० तत्पु०), वाणा उग्रतरङ्गभङ्गा इव (कर्मधा०), विकीर्णवाणोग्रतरङ्गा यस्मिन् स विकीर्णवाणोगतरङ्गभङ्ग (वहुव्री०)। महार्णवाभे =महाँश्चासौ अर्णव (कर्मधा०) तस्य आभा इव आभा यस्य (वहुवी०) तस्मिन्। दारुणकर्मदक्षम्=दारुणकर्मणि दक्षम (सप्तमी तत्पु०)। उपेत्य=उप+इ+ल्यप्। युधि=युध् की सप्तमी का एक वचन। युध् शब्द युद्ध के अर्थ मे नित्य स्त्रीलिंग होता है, यहाँ कवि ने इसे पुँलिङ्ग मे प्रयुक्त किया है।

पञ्चमोऽङ्कः।

अथ षष्ठोऽङ्कः

[तत प्रविशति काञ्चुकीय]

काञ्चुकीय—क इह भो ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्य कुरुते।

[प्रविश्य]

प्रतीहारी—अय्य ! अह विजआ। किं करीअदु ?

आर्य ! अह विजया। कि क्रियताम् ?

काञ्चुकीय—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभ प्रवृद्धोदयायोदयनाय—एप खलु महासेनस

सकाशाद् रैभ्यसगोत्र काञ्चुकीय. प्राप्त, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति।

व्याकरण—काञ्चनतोरणद्वारम्=काञ्चन च तत् तोरण च (कर्मधा०) तस्य द्वारम् (प०तत्पु०)। काञ्चनस्य विकार.= काञ्चनम्। प्रतिहारी=प्रतिह्रियते स्वामिसमीप नीयते सदेशः अनेन इति। प्रति+हृ+घञ्=प्रतिहारः, ङीप्—प्रतिहारी। क्रियताम्=कृ+ (कर्मणि) लोट्, प्रथ० पु० एकवचन। निवेद्यताम्=नि+विद्+णिच् (कर्मणि) (लोट्, प्रथ०पु० एक वचन)। वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय= (वत्सराज्य-प्रवृद्ध+उदयाय+उदयनाय) वत्साना राज्यम् (प० तत्पु०) तस्य लाभ. (प०तत्पु०) तेन प्रवृद्ध (तृ० तत्पु०) वत्सराज्यलाभ-प्रवृद्ध उदयः यस्य स. (बहुव्री०)। रैभ्यसगोत्र = रैभस्य गोत्रापत्य पुमान् रैभ्य। समान गोत्र यस्य स सगोत्र (बहुव्री०)। 'रैभ' के विषय मे कुछ पता नही मिलता परन्तु रैभ्य का वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् मे मिलता है।

अनुन्य—कुरते=यह मुहावरेदार (idiomatic) सस्कृत है, इसका अभिप्राय है कि द्वार पर कौन खड़ा है। नाटको मे प्राय ऐसा प्रयोग देखा जाता है। जैसे 'त्वमपि स्वाधिकारम-न्य कुरु' मुद्राराक्षस (द्वितीय अङ्क), त्वमपि त्व नियोगमशून्य कुरु' शकुन्तला (छठा अङ्क)।

[illegible]हारी—अय्य। अदेसकालो पडिहारस्स।

आर्य। अदेशकाल प्रतीहारस्य।

अनुवाद—अयमदेशकालो नाम।

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो। अज्ज भट्टिणो सुय्यामुप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिदा। तं च सुणिम्र भट्टिणा भणिम्र—घोसवदीए सद्दो विम्र सुणीम्रदि त्ति।

शृणोत्वार्य। अद्य भर्तु सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता। ता च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्या शब्द इव श्रूयत इति।

काञ्चुकीय—ततस्तत ?

प्रतीहारी—तदो तहिं गच्छिम्र पुच्छिदो—कुदो इमाए वीणाए आगमो त्ति। तेण भणिम्र—अह्मेहिं णम्मदातीरे कुय्यगुम्मलग्गा दिट्ठा। जइ प्पश्रोश्रण इमाए उवणीअदु भट्टिणोत्ति। त च उवणीद अङ्के करिम्र मोह गदो भट्टा। तदो मोहप्पच्चागदेण वप्फपय्याउलेण मुहेण भट्टिणा भणिम्र—दिट्ठासि घोसवदि सा हु ण दिस्सदि त्ति। अय्य। ईदिसो अणवसरे कहं णिवेदेमि।

ततस्तत्र गत्वा पृष्ट—कुतोऽस्या वीणाया आगम इति। तेन भणितम्—अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा। यदि प्रयोजनमनया, उपनीयता भर्त्रे इति। ता चोपनीतामङ्के कृत्वा मोह गतो भर्ता। ततो मोहप्रत्यागतेन वाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्—दृष्टासि घोषवति। सा खलु न दृश्यत इति। आर्य। ईदृशोऽनवसर। कथ निवेदयामि।

काञ्चुकीय—भवति। निवेद्यताम्। इदमपि तदाश्रयमेव।

प्रतीहारी—अय्य। इअ णिवेदेमि। एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादो ओदरइ। ता इह एव्व णिवेदइस्स।

आर्य। इय निवेदयामि। एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति। तदिहैव निवेदयिष्यामि।

काञ्चुकीय—भवति ! तथा ।

[उभौ निष्क्रान्तौ]

मिश्रविष्कम्भक ।

व्याकरण—अदेशकाल =अयोग्यो देश, अयोग्य कालश्च । कूर्चगुल्मलग्ना =कूर्चाणा गुल्मा (प० तत्पु०) तेषु लग्ना. (सप्त०तत्पु०)।पनीताम् = उप+नी+क्त+आ (द्वि०ए०वच०)। मोहप्रत्यागतेन=मोहात् प्रत्यागत (पञ्च०तत्पु०) तेन । निवेदयिष्यामि—नि+विद्+णिच् (लृट् उत्त० एक वचन) ।

सूर्यामुखप्रासादगतेन=श्री गणपति शास्त्री ने सूर्या का अर्थ विवाहदेवता लिया है । यहाँ उस महल का वर्णन है जिसके अग्रभाग पर विवाह-देवता का चित्र हो । जिस प्रकार लोग अपने घरो के मुख्य द्वारो पर गणेश आदि के चित्र बनवाते है, इसी प्रकार महल पर विवाह-देवता का चित्र था ।

घोषवती=घोष अस्या अस्ति इति घोषवती । वीणा का नाम है । यह वीणा उदयन ने वासवदत्ता को दी थी । वासवदत्ता की मृत्यु के बाद यह वीणा न जाने कहाँ चली गई थी । अब फिर आगई है ।

यहाँ 'भर्तु गतेन' यह पाठ कुछ अस्त-व्यस्त है । उपर्युक्त अर्थ ही ठीक है जैसा कि प्रतीहारी के वाक्य 'एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादमवतरति' से स्पष्ट हो जाता है ।

विष्कम्भक—नाटक मे आने वाली छोटी भूमिका का नाम है । यह भूत और भविष्यत् की साधारण घटनाओ का परस्पर सम्बन्ध स्थापित करता है । इसका लक्षण—

वृत्तवर्तिष्यमाणाना कथानाना निदर्शक ।

[illegible] ॥

मिश्रविष्कम्भक=इसमे नीच और मध्यम स्थिति के पात्र ाग लेते हैं। जैसे यहाँ पर कञ्चुकी मध्यम पात्र तथा प्रतीहारी नीच पात्र है। सस्कृत और प्राकृत दो भाषाओ के मिश्रित वार्तालाप से भी यह मिश्रविष्कम्भक कहलाता है।

[तत प्रविशति राजा विदूषकश्च]

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथ नु देव्या
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युषितास्यरण्यवासम् ॥१॥

अन्वय—श्रुतिसुखनिनदे ! देव्या स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता (त्वम्) कथ नु विहगगण-रजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयम् अरण्यवासम् अध्युषिता असि।

पदार्थ—श्रुतिसुखनिनदे=कानो को प्रसन्न करने वाले शब्द वाली। रजोविकीर्णदण्डा=बीठ से भरे हुए दण्ड वाली।

व्याकरण—श्रुतिसुखनिनदे=श्रुतिभ्या=सुख (च० तत्पु०) निनद यस्या सा (बहुव्री०) सम्बोधने। विहगगणरजोविकीर्णदण्डा=विहगाणा गण (प० तत्पु०) तस्य रज. (ष० तत्पु०) तेन विकीर्ण (तृ० तत्पु०), विहगगणरजोविकीर्ण दण्ड यस्या सा, (बहुव्री०)। अध्युषिता=अधि+वस्+क्त+आ।

अपि च। अग्निगधासि घोषवति ! या तपस्विन्या न स्मरसि,

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥२॥

विदूषक—अलं दाणि भवं अदिमत्तं सन्तप्पिअ ।

अलमिदानी भवानतिमात्र सन्तप्य ।

अन्वय—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदन्तनान्तरगुनानि उपगूहितानि, विरहे मा च उद्दिश्य परिदेवतानि, वाद्यान्तरेषु नम्मितानि वर्णितानि च (न स्मरसि) ।

पदार्थ—श्रोणी=कटिप्रदेश (Hips) । समुद्वहन=धारण करना । पार्श्वनिपीडितानि=बगलों में दबाने को । उपगूहितानि=आलिंगनों को । वाद्यान्तरेषु=सङ्गीत में जो विश्राम (Intervals) ते हैं, उनमें ।

व्याकरण—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि=श्रोण्या समुद्वहानि (तृ० तत्पु०) पार्श्वेन निपीडितानि (तृ० तत्पु०) पश्चात् न्द्व । उद्दिश्य=उत्+दिश्+ल्यप् । वाद्यान्तरेषु=वाद्यानाम् न्तरेषु (ष० तत्पु०) । अल सतप्य='अलम्' के साथ ल्यप् का योग नही होता, 'त्वा' का होता है ।

राजा—वयस्य ! मा मैवम,

चिरप्रसुप्त॰ कामो मे वीणया प्रतिबोधित ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥३॥

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय ।

विदूषक—जं भवं आणवेदि । [वीणा गृहीत्वा निष्क्रान्त]

यद् भवानाज्ञापयति ।

[प्रविश्य]

प्रतीहारी—जेदु भट्टा । एसो खु महासेणस्स सआसादो रुम्भसगोत्तो कञ्चुईओ देवीए अङ्गारवदीए

के विषय में भी वैसी ही चिन्ता कर रहा हूँ। वसन्ततिलका वृत्त ॥२॥

भावार्थ—राजा अभी-अभी वासवदत्ता के लिए शोक कर रहा था, परन्तु ज्योंही उसने पद्मावती के रोग के विषय में सुना, उसके हृदय को इतनी कड़ी चोट पहुँची कि उसे आशङ्का होने लगी कि मानो पद्मावती भी उससे सदा के लिए चली जा रही हो।

विदूष०—समुद्रगृह में शय्या लगाई है।

राजा—तो उसका रास्ता बताओ।

विदूष०—आइए, महाराज, आइए। (दोनों घूमते हैं)

विदूष०—यह समुद्रगृह है। आप प्रवेश करें।

राजा—पहले तुम चलो।

विदूष०—महाराज ऐसे ही सही। हाय, रे हाय! ठहरिए महाराज ठहरिए।

राजा—किसलिए?

विदूष०—दीपक के प्रकाश में दिखाई देते हुए आकार से निश्चय ही यह भूमि पर लोटता हुआ साँप है।

राजा—(प्रवेश करके, देखकर मुस्कराते हुए) वाह, मूर्ख इसे साँप समझ रहा है।

हे मूर्ख, (समुद्रगृह के) मुख्य-द्वार की महराब से भूमि पर गिरी हुई, सीधी और लम्बी हिलती हुई माला को तू साँप समझ रहा है, जो रात की मन्द पवन से हिलती हुई कुछ-कुछ साँप की-सी चेष्टाएँ कर रही है। वसन्ततिलका वृत्त ॥६॥

भावार्थ—जिसको तुम साँप समझ रहे हो, यह साँप नहीं बल्कि माला है। केवल वायु के कारण साँप की तरह हिल रही है।

विदूष०—आप ठीक कहते हैं। यह निश्चय ही साँप नहीं है। (प्रवेश करके और देखकर) (मालूम होता है) माननीय पद्मावती यहाँ आकर चली गई हैं।

राजा—मित्र, वह यहाँ नहीं आई होगी।

विदूष०—आप कैसे जानते हैं ?

राजा—इसमें जानने की क्या बात है ? देखो—

शय्या नीचे दबी हुई नहीं है, यह उसी तरह खिंची हुई है। चादर भी सिकुड़ी हुई नहीं है। स्वच्छ तकिया भी सिरपीड़ा की दवाओं से मैला नहीं हुआ। रोग में (रोगिणी की) आँखों को लुभाने के लिए कोई सजावट भी नहीं की गई। रोग के कारण मनुष्य जब (एक बार) शय्या पर पड़ जाता है तो अपने-आप इतनी जल्दी उसे नहीं छोड़ता। शार्दूलविक्रीडित वृत्त ॥४॥

भावार्थ—यहाँ पर पद्मावती को न पाकर और शय्या को पहले की तरह साफ-सुथरी देखकर, राजा अनुमान करता है कि पद्मावती यहाँ नहीं आई। अन्यथा यह कैसे सम्भव हो सकता था कि वह इतनी जल्दी स्वस्थ होकर शय्या छोड़ दे।

विदूष०—तो आप इस शय्या पर बैठकर थोड़ी देर तक श्रीमती (पद्मावती) की प्रतीक्षा करें।

राजा—अच्छा। (बैठकर) मित्र मुझे नींद सता रही है। कोई कथा सुनाओ।

विदूष०—मैं सुनाऊँगा, आप हुँकारा भरें।

राजा—अच्छा।

विदूष०—उज्जयिनी नाम की एक नगरी है। वहाँ निश्चय ही स्नान करने के बड़े सुन्दर स्थान हैं।

राजा—क्या तुम उज्जयिनी की याद कर रहे हो ?

विदूष०—यदि यह कहानी पसन्द नहीं तो मैं दूसरी सुनाता हूँ।

राजा—मित्र, ऐसा नहीं कि कहानी अच्छी नहीं परन्तु—

मैं अवन्तिराज की कन्या को याद कर रहा हूँ, जिसने (उज्जयिनी से) जाते समय अपने सम्बन्धियों की याद करके स्नेह से उमड़े आँखों के किनारे से लगे हुए आँसुओं को मेरी ही छाती पर गिराया था। इन्द्रवज्रा ॥५॥

भावार्थ—विदूषक के मुख से उज्जयिनी का नाम सुनकर राजा को वासवदत्ता की याद आने लगती है। जब राजा उसे उज्जयिनी से भगा कर ला रहा था तो किस प्रकार अपने माता-पिता आदि के वियोग के कारण उसने चुपचाप आँसू बहाये थे। उस समय का सारा दृश्य राजा की आँखों के सामने घूम रहा है।

कई बार वीणा सीखने के समय मुझे एकटक देखने के कारण हाथ से मिज़राब गिर जाने से, हवा में ही बजाने की क्रिया करती थी ॥६॥

भावार्थ—वीणा सीखते समय वासवदत्ता अपने पाठ्यविषय की ओर न देखकर राजा के मुख को एकटक देखती थी। वह प्रेम के कारण यहाँ तक अपनी सुधबुध खो देती थी कि उसे यह भी ध्यान नहीं रहता था कि उसके हाथ से मिज़राब गिर गई है, और वह पूर्ववत् खाली हाथों से बजाने की क्रिया करती रहती थी।

विदूष०—अच्छा, मैं और कथा सुनाता हूँ। ब्रह्मदत्त नाम का एक नगर है। वहाँ काम्पिल्य नाम का एक राजा था।

राजा—क्या कहा, क्या ?

विदूष०—(फिर वैसे ही कहता है)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य इस प्रकार कहो।

विदूष०—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

राजा—हाँ ऐसे ही।

विदूष०—तो आप थोड़ी देर इन्तज़ार करें। जब तक मैं इसे अच्छी तरह याद कर लूं। राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य। अब आप सुनें। अरे, आप तो सो गये। इस समय बड़ी सर्दी है। अपनी ओढ़नी (चादर) लेकर आता हूं।

(प्रस्थान)

(आवन्तिका वेष में वासवदत्ता और चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्या, आइए, इधर आइए। राजकुमारी शिर-पीड़ा से बहुत दुःखी है।

वासव०—कहाँ कष्ट है, पद्मावती की शय्या कहाँ लगाई गई है ?

चेटी—समुद्रगृह में शय्या लगाई गई है ।

वासव०—तो आगे चलो ।

चेटी—यह समुद्रगृह है । आर्या प्रवेश करें, जब तक मैं भी सिर का लेप लाने के लिए जल्दी करूँ ।

वासव०—आह, मेरे लिए देवता लोग बड़े निर्दय हैं । वियोग से व्याकुल आर्यपुत्र की एक-मात्र आसरा यह पद्मावती भी बीमार हो गई है । तो मैं अन्दर जाती हूँ । (प्रवेश करके और देखकर) दासियों की कितनी लापरवाही है ! बीमार पद्मावती को अकेली छोड़कर चली गई हैं । अब पद्मावती सो रही है । तो मैं बैठती हूँ । अथवा अलग जगह पर बैठने से प्रेम कम ही दिखाई देता है । तब इसी शय्या पर बैठती हूँ । (बैठकर) आज इसके साथ बैठकर मेरा हृदय बड़ा प्रसन्न हो रहा है । सौभाग्य से यह बड़े आराम से बिना रुके साँस ले रही है । अवश्य ही स्वस्थ हो गई है । आधा शय्या के एक भाग को (मेरे लिए) छोड़ रखने से कह रही है कि मैं इसका आलिङ्गन करूँ । तो (इसके साथ) सोती हूँ ।

(सोने का नाट्य करती है)

राजा०—(स्वप्न में) हाय वासवदत्ता !

वासव०—(अचानक उठकर) ओह, ये तो आर्यपुत्र हैं ! पद्मावती नहीं है । क्या मुझे देख लिया गया है ? तब तो निश्चय ही आर्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा का महान् भार मेरे देखे जाने से व्यर्थ हो गया है ।

राजा—हाय, अवन्तिराज की कन्या !

वासव०—सौभाग्य से आर्यपुत्र को स्वप्न आ रहा है । यहाँ कोई भी नहीं है । तो मैं थोड़ी देर ठहरकर आँखों और हृदय को रिझाऊँ ।

राजा—हे प्यारी ! शिष्ये ! मुझे उत्तर दो ।

वासव०—स्वामी, बोल रही हूँ । बोल रही हूँ ।

राजा—क्या नाराज हो ?

वासव०—नहीं, नहीं, दुःखित हूँ ।

राजा—यदि नाराज़ नहीं तो गहने क्यों नहीं पहनती ?

वासव०—इससे अधिक और क्या हो सकता है !

राजा—क्या विरचिका याद आ रही है ?

वासव०—(क्रोध से) आह, परे हटो ! यहाँ भी है विरचिका !

राजा—इसीलिए विरचिका के कारण मैं तुम्हे प्रसन्न करता हूँ ।

(दोनों हाथ फैलाता है ।)

वासव०—मैं (यहाँ) देर तक ठहर गई हूँ । कोई मुझे देख न ले। तो मैं जाती हूँ । अथवा शय्या के नीचे लटके हुए आर्यपुत्र के हाथ को शय्या के ऊपर रखकर जाती हूँ । (वैसे ही करके जाती है ।)

राजा—(एकाएक उठकर) वासवदत्ता, ठहर, ठहर । हाय !

शीघ्रता से निकलते हुए मैं किवाड़ से टकरा गया हूँ । इसलिए मैं स्पष्टरूप से नहीं जानता कि क्या यह सच था, या मेरे मन की कल्पना ॥७॥

(विदूषक का प्रवेश)

विदूष०—अहो ! महाराज जाग पड़े ।

राजा—मित्र, खुशी की बात सुनाता हूँ—वासवदत्ता जीवित है ।

विदूष०—हाय, वासवदत्ता? वासवदत्ता कहाँ ! वासवदत्ता तो देर की मर चुकी है ।

राजा—मित्र, ऐसी बात मत कहो ।

हे मित्र, शय्या पर आधी नींद सोये हुए मुझको वह जगाकर चली-गई है । पहले रुमण्वान् ने 'जल गई है' यह कहकर मुझे धोखा दिया था ॥८॥

विदूष०—हाय ! यह असम्भव है । याद आ गया, उज्जयिनी के स्नान के स्थानों का वर्णन सुनकर उस श्रीमती का ध्यान करने से वह स्वप्न में दिखाई दी होगी ।

राजा—तो क्या मैंने स्वप्न देखा है ?

यदि यह स्वप्न था तो न जागना ही अच्छा था, और यदि भ्रम है तो ऐसा भ्रम मुझे चिरकाल तक रहे ॥९॥

भावार्थ—न जागने से राजा का अभिप्राय है कि वह वासवदत्ता को स्वप्न में देखता रहता। इसलिए उसको इस बात की परवाह नहीं है कि यह स्वप्न है अथवा भ्रम।

विदूष०—हे मित्र, इस नगर में अवन्तिसुन्दरी नाम वाली यक्षिणी रहती है। वह आपने देखी होगी।

राजा—नहीं, नहीं।

स्वप्न के अन्त में जागने पर मैंने पतिव्रत-धर्म का पालन करती हुई वासवदत्ता के काजल से रहित नेत्रों वाले, लम्बे (बिखरे हुए) बालों वाले मुख को देखा है ॥१०॥

भावार्थ—वासवदत्ता के काजल-रहित नेत्र तथा बिखरे हुए बाल उसकी वियोग अवस्था को अच्छी तरह प्रकट करते हैं। स्त्रियाँ पति के वियोग में किसी भी प्रकार का शृङ्गार नहीं करती।

—और भी, हे मित्र, देखो, देखो।

डरी हुई उस देवी ने जो मेरी इस बाहु को दबाया था, वह मेरी बाहु स्वप्न में उत्पन्न हुए रोमाञ्च को अब भी नहीं छोड़ती ॥११॥

भावार्थ—वासवदत्ता के स्पर्श के कारण, राजा की बाहु जिस प्रकार स्वप्नावस्था में रोमाचित हो उठी थी, जागने पर भी उसी तरह हो रही है।

विदूष०—आप अब व्यर्थ मत सोचें। आप आइए, चतु:शाला में चलें।

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—आर्य की जय हो ! हमारे महाराज दर्शक ने आपको कहा है कि यह आपका मन्त्री रुमण्वान् बड़ी भारी सेना लेकर आरुणि का नाश करने के लिए आया है। और मेरी सेना के विजय दिलाने वाले सब अङ्ग— हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सब तैयार हैं। इसलिए आप उठें। और भी—

आपके शत्रुओं में फूट डाल दी गई है। गुणों के कारण आपको चाहने वाले लोगों को तसल्ली दे दी गई है। चढाई के समय सेना के पिछले भाग की रक्षा का भी प्रबन्ध कर दिया गया है। शत्रु का विनाश करने के लिए जो साधन हो सकते हैं उनको पूरा कर लिया गया है। हमारी सेना ने गङ्गा को पार कर लिया है और वत्सदेश तुम्हारे हाथ में है। शार्दूलविक्रीडित वृत्त ॥१२॥

भावार्थ—कंचुकी का उपर्युक्त कथन राजा को उत्तेजित करने के लिए है। राजा वासवदत्ता के चिन्तन में बड़ा अधीर हो रहा था। ऐसी अवस्था में उससे युद्ध होना कैसे सम्भव हो सकता था। दूसरा, कंचुकी ने राजा को सैनिक स्थिति का भी पूरा-पूरा हाल बता दिया है जिसमे राजा सब प्रकार से सावधान हो जाय।

राजा—(उठकर) बहुत अच्छा। अब मै—

उतरे हुए (सचार करते हुए) हाथी घोड़ों से युक्त तथा चलाये हुए बाणरूपी भयानक लहरों से भरे हुए, महासागर-जैसे युद्धक्षेत्र में, क्रूर कर्म करने में चतुर आरुणि के पास जाकर उसका नाश करूँगा ॥१३॥

(सब का प्रस्थान)

छठा अङ्क

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—अरे, यहाँ सुनहरे मुख्य द्वार पर कौन खड़ा है ?

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रति०—आर्य, मैं विजया हूँ। (कहो) क्या आज्ञा ?

कंचुकी—श्रीमति, वत्सराज्य की प्राप्ति से बढ़े हुए प्रताप वाले (महाराज) उदयन से निवेदन कीजिए कि (महाराज) महासेन की ओर से रैभ्य गोत्रवाला कञ्चुकी आया है। पूज्या अङ्गारवती की भेजी हुई वासव-दत्ता की धाय वसुन्धरा भी (आई है)। और (दोनों) द्वार पर खड़े हैं।

प्रति०—आर्य, सन्देश के लिए उचित स्थान अथवा समय नहीं।

कञ्चुकी—क्यों उचित स्थान और समय नहीं है ?

प्रति०—आर्य, सुनिए, आज महाराज के सूर्यामुख महल के ऊपर चले जाने पर किसी ने वीणा बजाई। उसे सुनकर महाराज ने कहा—घोपवती-जैसा शब्द सुनाई देता है।

कञ्चुकी—फिर ?

प्रति०—तब वहाँ जाकर (उससे) पूछा कि यह वीणा कहाँ से आई है ? उसने कहा—"मैंने इसे नर्मदा के तट पर कुश की झाडी में पड़ी हुई पाया है। यदि इससे कोई प्रयोजन है तो महाराज के लिए ले जाइए"। (वहाँ से) लाई हुई उसको (वीणा को) गोद में रखकर महाराज बेहोश हो गये। तब होश में आने पर आँसुओं से व्याकुल मुख वाले महाराज ने कहा—"घोपवती, तू मिल गई है। परन्तु वह (वासवदत्ता) नहीं मिली।" आर्य, इसलिए उचित समय नहीं है, कैसे निवेदन करूँ ?

कञ्चुकी—श्रीमति, अवश्य निवेदन कीजिए। यह भी उसी से संबंध रखता है।

प्रति०—आर्य, अभी निवेदन करती हूँ। ये महाराज सूर्यामुख महल से उतर रहे हैं। तो यहीं निवेदन करूँगी।

(दोनों का प्रस्थान)

मिश्रविष्कम्भक।

(राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा—हे कानों को प्रसन्न करने वाले शब्दवाली ! देवी (वासवदत्ता) के स्तनों और जंघाओं पर विश्राम करने वाली, तू, जिसका दण्ड पक्षिगण की बीठों से भर गया है, किस प्रकार भयानक जंगल में वास करती रही। पुष्पिताग्रा वृत्त ॥१॥

और भी, घोपवती, तुम प्रेम से हीन हो, जो उस बेचारी को याद नहीं करती।

तुझे जंघा पर उठाकर पहलू में दबाना, थकने पर स्तनों के बीच में रखकर तुम्हारा सुख देने वाला आलिङ्गन, वियोग में मेरे कारण विलाप करना और संगीत के विश्राम (विराम) में मुस्कराकर बातें

कन्चुकी—जी, हाँ। महासेन कुशलपूर्वक हैं। यहाँ के सब लोगों की भी कुशल पूछते हैं।

राजा—(आसन से उठकर) महासेन की क्या आज्ञा है ?

कन्चुकी—वैदेहीपुत्र (महाराज) के लिए यह योग्य ही है। परन्तु महाराज आसन पर बैठकर ही महासेन का सन्देश सुनें।

राजा—जैसी (महाराज) महासेन की आज्ञा। (बैठता है।)

कन्चुकी—सौभाग्य से शत्रुओं से छीना हुआ राज्य लौटा लिया है। क्योंकि—

जो लोग कायर और निर्बल होते हैं; उनमें उत्साह उत्पन्न नहीं होता। प्राय. उत्साह वाले पुरुष ही राजलक्ष्मी का भोग करते हैं ॥७॥

राजा—आर्य, यह सब (महाराज) महासेन का ही प्रभाव है। क्योंकि—

मुझे पहले हराकर पुत्रों की तरह (मेरा) पालन किया। मैं उनकी कन्या बलपूर्वक ले आया परन्तु मैंने उसकी रक्षा भी न की। उसकी मृत्यु सुनकर भी उनका मुझपर वैसा ही स्नेह (बन्धुभाव) है। निश्चय ही मैंने जो अपने वत्स देश को प्राप्त कर लिया है, इसका कारण भी महाराज ही हैं ॥८॥

भावार्थ—राजा बहुत पहले की घटनाएँ याद करके महाराज महासेन के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन कर रहा है।

कंचुकी—यह (महाराज) महासेन का सन्देश है। महारानी का सन्देश ये माननीया कहेंगी।

राजा—हा माता !

सोलह रानियों में बड़ी, नगर की पवित्र देवता, मेरे दूरवास से दुखी मेरी माता कुशलपूर्वक तो हैं ? ॥९॥

धात्री—महारानी स्वस्थ हैं और आपकी सब तरह की कुशल पूछती हैं।

राजा—सब प्रकार की कुशल ? माता, ऐसी ही कुशल है।

धात्री—महाराज, अब अधिक सन्ताप न करें।

कंचुकी—आर्यपुत्र, धैर्य धारण करो। इस प्रकार आर्यपुत्र से प्रेमपूर्वक स्मरण की जाने पर महासेन की पुत्री मरी हुई भी जीवित है।

मृत्यु आने पर कौन किस की रक्षा कर सकता है? रस्सी टूटने पर घड़े को कौन (गिरने से) बचा सकता है? इस प्रकार वृक्ष के समान स्वभाव वाला मनुष्य समय-समय पर काटा जाता है और फिर उत्पन्न होता है ॥१०॥

भावार्थ—वृक्षों के उगने और कटने की तरह ही मनुष्य भी जन्म और मृत्यु को प्राप्त करता है। इसमें किसी का वश नहीं चलता। यह एक अटल नियम है।

राजा—आर्य, ऐसी बात मत कहो।

महासेन की कन्या मेरी शिष्या और प्यारी रानी थी। वह मुझे दूसरे जन्मों में भी क्यों न याद आयेगी ॥११॥

धात्री—महारानी ने कहा है—वासवदत्ता मर गई है। मुझे और महासेन को जैसे गोपालक और पालक हैं वैसे ही तुम हो, जिसे हमने पहले ही अपना जामाता पसन्द किया था। इसीलिए तुम उज्जयिनी लाये गये थे। अग्नि को साक्षी रखे बिना वीणा सिखलाने के बहाने से उसको तुम्हें दे दिया था। चञ्चलता के कारण तुम विवाह उत्सव हुए बिना ही चले गये थे। और तब हमने तुम्हारी और वासवदत्ता की तसवीर चित्रफलक पर बनवा कर विवाह सम्पूर्ण किया। यह चित्रफलक तुम्हारे पास भेज रही हूँ। इसे देखकर शान्त हो जाइए।

राजा—अहा, महारानी ने बड़ी मीठी और उचित बातें कही हैं।

ये शब्द सैकड़ों राज्यों की प्राप्ति से भी अधिक प्यारे हैं। जोकि उन्होंने मुझ अपराधी पर भी अपना स्नेह नहीं भुलाया ॥१२॥

पद्मा०—आर्यपुत्र, चित्र में लिखित बहिन का दर्शन करके मैं प्रणाम करना चाहती हूँ।

धात्री—देखिए, देखिए, राजकुमारी (चित्रपट दिखलाती है।)

पद्मा०—(देखकर, अपने मन में) हूँ ! यह तो आर्या आवन्तिका से बहुत मिलती जुलती है। (प्रकट) क्या यह आर्या की आकृति से मिलती जुलती है ?

राजा—न केवल मिलती-जुलती है। बल्कि मैं समझता हूँ वही है। हाय कष्ट !

ऐसे सुन्दर रूप पर भयानक मुसीबत किस तरह आ पड़ी ! और मुख की इस सुन्दरता को अग्नि ने किस प्रकार नष्ट किया ! ॥१३॥

पद्मा०—आर्यपुत्र के चित्र को देखकर पता करूँ कि यह आर्या से मिलती-जुलती है कि नहीं।

धात्री—राजकुमारी, देखो, देखो।

पद्मा०—(देखकर) आर्यपुत्र की तसवीर के सादृश्य से जान लूँगी कि यह आर्या से मिलती है या नहीं।

राजा—देवि ! चित्र देखने के समय से लेकर मैं तुम्हें प्रसन्न और उदास देख रहा हूँ। यह क्या बात है ?

पद्मा०—इसी चित्र से मिलती-जुलती एक स्त्री यहाँ भी रहती है।

राजा—क्या वासवदत्ता से ?

पद्मा०—जी हाँ।

राजा—तो उसको शीघ्र ले आओ।

पद्मा०—आर्यपुत्र, मेरी कौमार्यावस्था में किसी ब्राह्मण ने 'मेरी बहिन है' यह (कहकर) इसे धरोहर रखा था। वह प्रोषितभर्तृका होने के कारण पराये मनुष्य का दर्शन नहीं करती। तो आर्या (वसुन्धरा) देख ले कि यह उसके समान है या नहीं।

राजा—यदि वह ब्राह्मण की बहिन है तो साफ है कि कोई और (स्त्री) होगी। ससार में कभी-कभी एक दूसरे की आकृति भी मिलती हुई देखने में आती है ॥१४॥ (प्रवेश करके)

प्रति०—महाराज की जय हो। उज्जयिनी का रहने वाला एक ब्राह्मण, जिसने राजकुमारी के पास बहिन को धरोहर रखा था, उसको वापिस

लेने के लिए द्वार पर खड़ा है।

राजा—पद्मावती, क्या वही ब्राह्मण है ?

पद्मा०—हो सकता है।

राजा—शिष्टाचार के साथ उस ब्राह्मण को जल्दी अन्दर ले आओ।

पद्मा—जैसी राजा की आज्ञा। (गमन)

राजा—पद्मावती, तुम भी उस (आवन्तिका) को ले आओ।

पद्मा०—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा। (गमन)

(तब यौगन्धरायण और प्रतीहारी का प्रवेश)

यौगन्ध०—(अपने मन में) ओह !

महाराज के हित के लिए महारानी को छिपाकर भलाई के विचार से मैंने यह सब इच्छानुसार किया है। काम के सिद्ध हो जाने पर भी 'यह महाराज क्या कहेंगे' इस शङ्का से मेरा मन व्याकुल है ॥१५॥

भावार्थ—महाराज के लिए इतना कुछ करने पर भी यौगन्धरायण मन में डर रहा है कि कहीं महाराज उसकी नीति पर अप्रसन्न न हो जायँ। इससे यौगन्धरायण की अनन्य स्वामिभक्ति का परिचय मिलता है।

प्रति०—ये महाराज हैं। आप पास चलें।

यौगन्ध०—जय हो महाराज, जय हो।

राजा—आवाज़ तो सुनी हुई-सी है। हे ब्राह्मण ! क्या आपने अपनी बहिन को पद्मावती के पास धरोहर रखा था।

यौगन्ध०—जी हाँ।

राजा—तो शीघ्र ही इनकी बहिन को ले आओ।

प्रति०—जैसी महाराज की आज्ञा।

(तब पद्मावती, आवन्तिका और प्रतिहारी का प्रवेश)

पद्मा०—आर्या, इधर आओ। तुम्हें प्रिय बात सुनाती हूं।

आव०—क्या, क्या ?

पद्मा०—तुम्हारा भाई आया है।

आव०—सौभाग्य से अब भी मुझे याद करता है।

पद्मा०—(पास आकर) आर्यपुत्र की जय हो। यह धरोहर है।

राजा—लौटा दो, पद्मावति ! गवाह के सामने ही धरोहर लौटाना चाहिए। यहाँ पर आर्य रैभ्य और मान्या (वसुन्धरा) साक्षी होंगे।

पद्मा०—आर्य, अब आर्या को ले जाइए।

धात्री—(आवन्तिका को अच्छी तरह देख कर) अहा ! यह तो राजकुमारी वासवदत्ता है।

राजा—क्या महासेन की पुत्री ? रानी ! तुम पद्मावती के साथ अन्दर चलो।

यौगन्ध०—नहीं नहीं, इसे अन्दर नहीं भेजना चाहिए। यह तो निश्चय ही मेरी बहिन है।

राजा—आपने क्या कहा ? यह तो महासेन की कन्या है।

यौगन्ध०—हे राजन्,

आपने भरतकुल में जन्म लिया है। (आप) विनीत ज्ञानी पवित्र और राजधर्म के प्रदर्शक हैं। इसलिए (इसको) ज़बरदस्ती छीनना आपको उचित नहीं ॥१६॥

राजा—अच्छा, तो देखते हैं कि कहाँ तक रूप मिलता है। पर्दा (घूंघट) हटा दो।

यौगन्ध०—महाराज की जय हो।

वासव०—आर्यपुत्र की जय हो।

राजा—अहो ! यह यौगन्धरायण ! यह महासेनपुत्री !

क्या यह सच है अथवा स्वप्न ? उसे मैं फिर देख रहा हूँ। मैंने उस समय भी इस प्रकार देखा था (परन्तु) तब भी मैं ठगा गया था ॥१७॥

यौगन्ध०—महाराज, रानी को ले जाने से मैं निश्चय ही अपराधी हूँ। महाराज, मुझे क्षमा करें। (राजा के चरणों पर गिरता है।)

राजा—(उठाकर) आप सचमुच यौगन्धरायण हैं !

झूठे पागलपन, युद्धों और शास्त्रानुसार परामर्शों (विचारों) से—इस तरह के आपके प्रयत्नों से हम डूबते हुए उबर आये हैं ॥१८॥

भावार्थ—यौगन्धरायण ने वासवदत्ता के विवाह से पहले उदयन को महासेन की कैद से छुड़ाने के लिए जो पागल का वेश धारण किया था, राजा उसका संकेत कर रहा है।

यौगन्ध—हम तो महाराज के भाग्य के पीछे चलने वाले हैं।

पद्मा०—अहा यह आर्या (वासवदत्ता) है! मैंने न जानते हुए सखियों जैसा बर्ताव करने से शिष्टाचार का उल्लंघन किया है। इसलिए सिर झुकाकर क्षमा माँगती हूँ।

वासव०—(पद्मावती को उठाकर) हे सौभाग्यवति! उठो, उठो। इसमें प्रार्थी का (मेरा अपना) अपराध है।

पद्मा०—मैं कृतार्थ हो गई हूँ।

राजा—मित्र यौगन्धरायण! रानी को छिपाने में तुम्हारा क्या अभिप्राय था?

यौगन्ध०—ताकि सारी कौशाम्बी की रक्षा कर सकूँ।

राजा—और पद्मावती के हाथ धरोहर रखने से क्या अभिप्राय?

यौगन्ध०—पुष्पकभद्रादि सिद्धों ने बतलाया था कि (पद्मावती) महाराज की रानी बनेंगी।

राजा—क्या यह रुमण्वान् को भी पता था?

यौगन्ध०—महाराज! सब को ही पता था।

राजा—ओह! रुमण्वान् निश्चय ही बड़ा धूर्त है!

यौगन्ध०—महाराज, देवी का कुशल-समाचार बतलाने के लिए माननीय रैभ्य और मान्या वसुन्धरा को आज ही लौटा दीजिए।

राजा—नहीं-नहीं। देवी पद्मावती के साथ हम सब चलेंगे।

यौगन्ध०—जैसी महाराज की आज्ञा।

भरतवाक्य—हमारे सिंह के सदृश महाराज, समुद्र तक फैली हुई, हिमालय और विन्ध्याचल रूपी कुण्डलों वाली, एक राज्य-छत्र से चिह्नित इस पृथ्वी पर (चिरकाल तक) शासन करें।

(सब का निर्गमन)

परीक्षोपयोगी सन्दर्भों की सप्रकरण व्याख्या

EXPLANATION WITH REFERENCE TO CONTEXT

पहला अङ्क

१. एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते [पृ० ३६, पं० १८]

तपोवन में पहुँचकर जब वासवदत्ता ने देखा कि राजपुरुष आश्रम-वासियों को वहाँ से निकाल रहे हैं, तो उसे भय हुआ कि कहीं वह भी न निकाली जाय। इसलिए उसने यौगन्धरायण से पूछा कि क्या वह भी वहाँ से निकाली जायगी। इस पर यौगन्धरायण उसे समझाने के लिए कह रहा है कि 'परिचय न होने से देवताओं का भी अपमान हो जाता है।' अत उसके इस प्रकार कहने का अभिप्राय यह है कि उसे अपमान से डरना नहीं चाहिए। यहाँ किसी को क्या पता कि वह महा-रानी वासवदत्ता है।

२ कालक्रमेण जगत परिवर्तमाना,

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्ति। [पृ० ३८, पं० १४]

जब तपोवन में वासवदत्ता निकाले जाने के डर से बहुत व्यथित होती है, तब यौगन्धरायण उसे तसल्ली देते हुए कहता है कि 'काल के अनुसार मनुष्यों का भाग्य पहियों के अरों (Spokes) के समान घूमता हुआ चलता है।' भाव यह है कि जिस प्रकार पहियों के अरे ऊपर और नीचे जाते रहते है इसी प्रकार मनुष्य के भाग्य में भी घटा-बढ़ी होती रहती है। कभी अच्छे दिन आते हैं कभी बुरे। तुमने बहुत अच्छे दिन देखे हैं और अब भी वह समय दूर नहीं जब फिर वैसा ही आनन्दमय जीवन व्यतीत करोगी।

३. प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते। [पृ० ४३, पं० ६]

पद्मावती को देखकर यौगन्धरायण के मन में उसके प्रति कुछ आत्मीयता के भाव उदय होने लगते हैं। इस कारण वह अपने मन में कहता है कि 'द्वेष या आदर मन के भावों से ही उत्पन्न होता है।' चूँकि वह पद्मावती को अपने महाराज की रानी बनाना चाहता है, इसीलिए उसके मन में उसके प्रति अपनापन-सा अनुभव हो रहा है। पद्मावती के कारण भृत्यों द्वारा की गई उत्सारणा को देखकर यौगन्धरायण के मन में तनिक द्वेष के भाव जागरित हुए थे, परन्तु तत्काल विलीन हो गये।

४. दुःखं न्यासस्य रक्षणम्। [पृ० ४६, पं० ४]

जब बहन को धरोहर रखने के लिए यौगन्धरायण पद्मावती से प्रार्थना करता है तब उसके इस प्रस्ताव मे कन्चुकी सहमत नहीं होता। और कहता है कि 'धरोहर की रक्षा करनी कठिन है।' वह समझता है कि एक स्त्री की रक्षा का भार अपने ऊपर लेना बहुत कठिन है। धन, प्राण, तप आदि का त्याग हो सकता है परन्तु इतनी भारी ज़िम्मेवारी का भार उठाना बड़ा संकटपूर्ण है।

५. नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि। [पृ० ५१ पं० ३]

यौगन्धरायण वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर रखने के बाद अपने मन में सोचता है कि उसने ठीक ही किया है। क्योंकि 'भाग्य अच्छी तरह परखे हुए सिद्ध पुरुषों की वाणी के अनुसार ही चलते हैं।' इसलिए जो उसने सिद्धों की भविष्यवाणी पर विश्वास करके वासवदत्ता का धरोहर रखना आदि कार्य किये हैं वे उचित ही हैं। भयभीत होने का कोई कारण नहीं।

दूसरा अङ्क

६. सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम। [पृ० ६६, पं० २३]

पद्मावती के गेंद खेलते हुए हँसी-हँसी में उदयन का प्रसङ्ग आ गया। जब चेटी उसके रूप के विषय में सन्देह प्रकट करने लगी तो वासवदत्ता से

न रहा गया, और कह उठी कि 'नहीं, रूपवान् ही है।' इस पर पद्मावती के पूछने पर 'आप कैसे जानती हैं' वासवदत्ता ने कहा कि उज्जयिनी के लोग उसके रूप की प्रशंसा करते हैं। इस पर पद्मावती ने कहा कि यह सम्भव है क्योंकि 'सौन्दर्य सब के मन को भाता है।' ऐसा कहते हुए वह वासवदत्ता की बात का अनुमोदन करती है कि उदयन अवश्य ही सुन्दर होगा।

७. आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति।
[पृ० ६८, पं० ८]

जब पद्मावती वासवदत्ता और चेटी के साथ गेंद खेलने में लगी हुई थी, तब धात्री ने आकर बतलाया कि उसकी उदयन से सगाई हो गई है। इस पर वासवदत्ता ने कहा कि यह अनर्थ है। राजा पहली स्त्री को इतनी जल्दी कैसे भूल गया है। उस समय धात्री कहती है कि 'शास्त्रों के प्रभाव से महापुरुषों के हृदय आसानी से प्रकृतिस्थ हो जाते हैं।' चूँकि उदयन शास्त्रानुसार चलने वाले हैं और इसलिए संसार को नाशवान् समझते हुए उन्होंने अपने मन को सँभाल लिया है। अतः उसे इस पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

तीसरा अङ्क

८. धन्या खलु चक्रवाकवधू यान्योन्यविरहिता न जीवति।
[पृ० ७०, पं० १६]

वासवदत्ता के लिए पद्मावती के विवाह के आमोद-प्रमोद में भाग लेना असम्भव हो जाता है और वह वहाँ से हटकर प्रमदवन में अकेली बैठकर कहती है—'अवश्य ही चकवी धन्य है जो अलग होकर नहीं जीती'। वासवदत्ता चकवी को धन्य समझती है जो पति के वियोग में दुःख भोगने के लिए जीवित नहीं रहती। वह अपने-आपको बड़ी अभागिन समझ रही है, क्योंकि पति से अलग होकर पत्नी को मर जाना ही अच्छा है।

चौथा अङ्क

९. अधन्यस्य मम कोकिलानाम् अक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्त । [पृ० ७८, प० १५]

चेटी जब विदूषक से राजा के लिए अंगराग लाने के लिए पूछती है, तब वह उसे भोजन न लाने के लिए कहता है। चेटी इसका कारण पूछती है, तो विदूषक कहता है कि—'जिस प्रकार कोयल की आँखें घूमती हैं उस प्रकार मेरा पेट घूम (गुड़गुड़ कर) रहा है'। भाव यह है कि पेट में विकार हो जाने से वह भोजन नही कर सकेगा। भोजन का विषय न होने पर भी विदूषक का ध्यान उधर ही है, चाहे उसे अस्वस्थ होने के कारण उसका निषेध करना पड़ा है।

१०. भवतु भवतु। दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य। [पृ० ९४, पं० १२]

विदूषक के आग्रह करने पर जब राजा स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लेता है कि उसे वासवदत्ता से अधिक प्रेम है, तो वासवदत्ता, जो वहाँ ओट में खड़ी थी, बहुत प्रसन्न होती है। वह कहती है कि—'ठीक है, मुझे इस कष्ट का मूल्य मिल गया है'। वास्तव में अज्ञातवास के जिन कष्टों का वह सामना कर रही है, वे सब अब उसे तुच्छ दिखाई देने लगते हैं। वह समझने लगती है कि उसका कष्ट-सहन व्यर्थ नहीं गया। पति उसे प्रेम करता है, यह जानकर उसे परम परितोष प्राप्त होता है।

११. अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति। [पृ० १००, पं० २५]

प्रमदवन में राजा और विदूषक बैठे हुए थे। राजा वासवदत्ता की याद में रो रहा था। राजा के आँसुओं से भरे हुए मुख को धुलाने के लिए विदूषक जल लाया। इसी समय पद्मावती वहाँ आ गई और विदूषक से राजा के रोने का कारण पूछने लगी। विदूषक टाल गया और कहने लगा कि काश-फूल की धूलि पड़ जाने से राजा की आँखों में आँसू आ गये हैं। पद्मावती सब कुछ समझती थी। वह मन में सोचती है कि—'चतुर पुरुषों के नौकर भी चतुर होते हैं'। जिस प्रकार राजा

अपने मन की अवस्था का हाल प्रकट नहीं होने देता, उसी प्रकार उस का नौकर भी भेद को निकलने नहीं देता।

पाँचवाँ अङ्क

१२. प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति।

[पृ० १११, प० ६]

राजा पद्मावती की शिर-पीड़ा का समाचार सुनकर उसे देखने के लिए समुद्रगृह में जाता है। वहाँ शय्या को शून्य देखकर सोचने लगता है आखिर बात क्या है। क्योंकि—रोगी शय्या पर पड़कर इतनी जल्दी कैसे उठ सकता है। यदि पद्मावती सिर-दर्द के कारण बीमार पड़ी होती तो इतनी जल्दी उसे कैसे आराम आ जाता ! बाकी चिह्नों से भी उसके यहाँ होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

१३. 'दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता।

[पृ० ११६, प० १२]

स्वप्न के अन्त में वासवदत्ता को देखकर राजा को निश्चय हो जाता है कि वह मरी नहीं है। अवश्य उसके साथ कोई गहरी चाल चली जा रही है। विदूषक राजा की इस बात को नहीं मानता। तब राजा ज़ोर देकर कहता है कि 'जल गई है' यह कह कर रुमण्वान् ने मेरे साथ धोखा किया है'। अवश्य ही यह कोई षड्यन्त्र होगा, जिसका रुमण्वान् को ज्ञान होगा।

छठा अङ्क

१४ कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोष-मुत्पादयति'। [पृ० १३१, पं० १६]

उज्जयिनी से सदेश लेकर रैभ्य नामक कञ्चुकी और धात्री वसुन्धरा के आने पर, उदयन पद्मावती के साथ उनसे मिलना चाहता था। पद्मा-वती इस विचार से सहमत न थी। वह समझती थी कि राजा का दूसरा विवाह हो जाने से ऐसा करना उनके लिए दुःख का कारण बनेगा। इस पर उदयन उसे समझाता है कि—'पत्नी को देखने योग्य पुरुषों को पत्नी

देखने से परे रखता है, इस कारण बहुत बुराई होगी'। वासवदत्ता मर तो अवश्य गई है, परन्तु उसके बन्धुओं से सम्बन्ध तो नहीं टूट गया। वासवदत्ता के बन्धुओं के लिए पद्मावती भी वैसी ही होनी चाहिए। इसलिए पत्नी को परे रखना अच्छा नहीं।

१५. प्रायेण हि नरेन्द्रश्री. सोत्साहैरेव भुज्यते। [पृ० १३५, पं० १०]

रैभ्य नामक कन्चुकी राजा को नष्ट राज्य के लौटा लेने पर बधाई देते हुए कहता है कि—'केवल उत्साहयुक्त पुरुष ही राजलक्ष्मी का उपभोग कर सकते हैं।' इस प्रकार कह कर वह राजा के साहस की प्रशंसा कर रहा है। यदि राजा साहस से काम न लेता तो किसी प्रकार भी शत्रु के हाथ में गया हुआ राज्य उसे वापिस न मिल सकता।

१६. 'एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनाना काले काले छिद्यते रुह्यते च'।
[पृ० १३७, प० ३]

उज्जयिनी से आई हुई धात्री ने जब रानी अङ्गारवती की ओर से राजा की कुशल पूछी, तो राजा बहुत दुखी हुआ क्योंकि वासवदत्ता से वियुक्त होकर उसका सकुशल होना कैसे सम्भव हो सकता था! राजा की ऐसी अवस्था देखकर रैभ्य नामक कन्चुकी राजा को तसल्ली देते हुए कहता है कि—'मनुष्य का स्वभाव तो वृक्षों के समान है। जिस प्रकार समय आने पर वृक्ष उगते और काटे जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी मरते और उत्पन्न होते हैं। संसार की गति ऐसी ही है। इसलिए आपको वासवदत्ता का शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसका समय आगया था।'

१७. 'साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्य.'। [पृ० १४३, पं० २२]

जब यौगन्धरायण धरोहर रखी हुई अपनी बहन को वापस लेने के लिए आता है और पद्मावती उसे लौटाने लगती है तो राजा कहता है कि—'धरोहर गवाह के सामने लौटानी चाहिए'। राजा शास्त्र के नियमों को जानता है और समझता है कि इस प्रकार की विचित्र धरोहर के सम्बन्ध में झगड़ा उत्पन्न होने पर केवल गवाह ही सत्यासत्य का निर्णय करा सकता है।

१८ अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति। [पृ० १४६, पं० १२]

जब वासवदत्ता के असली रूप का पता लग जाता है, तो पद्मावती उसे अपनी बड़ी बहन समझ कर प्रणाम करती है और यह कहते हुए क्षमा मांगती है कि "मैंने अनजान में आप से सखी जैसा व्यवहार करने से शिष्टाचार का उल्लंघन किया है।" इसके उत्तर में वासवदत्ता कहती है—"मेरा अपना शरीर ही अपराधी है" तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं। भाव यह है कि यदि अपना रूप छिपा कर मैं तुम्हारे पास न रहती तो इस प्रकार की परिस्थिति कभी उपस्थित ही न होती। इसलिए तुम सर्वथा निर्दोष हो।

नाटक-सम्बन्धी परिभाषाएँ

नान्दी—यह मङ्गलाचरण का पद्य होता है। नाटक के आरम्भ से पूर्व निर्विघ्न समाप्ति की इच्छा से जो देवता, ब्राह्मण, राजा अथवा किसी महापुरुष की स्तुति की जाती है, उसे 'नान्दी' कहते हैं।

स्वप्नवासवदत्त में 'उदयनवेन्दु०' इत्यादि पद्य नान्दी के समान अवश्य है, परन्तु नाटककार ने इसे नान्दी नहीं माना है। यहाँ सूत्रधार पहले प्रवेश करता है और उपर्युक्त मङ्गल पद्य पढ़ता है। यह भास का भिन्न क्रम है। अन्यत्र ऐसा उदाहरण नहीं मिलता।

सूत्रधार—नाटक के सम्पूर्ण कार्यों के चलाने वाले व्यक्ति को सूत्र-धार कहते हैं। जहाँ पात्रों की वेषभूषा तथा अन्य बहुत से कार्य इसी पर निर्भर होते हैं, वहाँ रङ्गमञ्च के देवता की पूजा भी यही करता है।

नेपथ्य—जहाँ पर नट लोग वेषरचना करते हैं और मञ्च पर जाने तक प्रतीक्षा करते हैं। यह स्थान परदे के पीछे होता है और दर्शक इसे देख नहीं सकते।

प्रस्तावना—नान्दी के उपरान्त जो नटी, विदूषक अथवा पारि-पार्श्विक नाटक के खेलने से सम्बन्ध रखने वाली बातें सूत्रधार से कहते हैं और नाटक में होने वाली घटना तथा पात्र-प्रवेश की सूचना संकेत मात्र से देते हैं, उसे 'प्रस्तावना' कहा जाता है। भास के नाटकों में इस

का नाम 'स्थापना' दिया गया है। भास की स्थापना अत्यन्त संक्षिप्त है। यहाँ तक कि नाटककार का नाम-निर्देश तक भी नहीं है।

विष्कम्भक—(विष्कम्नाति कथाम् इति विष्कम्भक) यह अङ्क के प्रारम्भ में होता है। इसमें मध्यम तथा नीच श्रेणी के पात्र वार्तालाप द्वारा बीती हुई तथा आनेवाली घटनाओं का निर्देश करते हुए कथा को एक सूत्र में बाँधते हैं। यह दो प्रकार का होता है—शुद्ध तथा मिश्र। शुद्ध में मध्यम श्रेणी के पात्र भाग लेते हैं और मिश्र में नीच और मध्यम श्रेणी के। शुद्ध वाले पात्र प्रायः सस्कृत बोलते हैं और मिश्र वाले मिली-जुली अर्थात् संस्कृत और प्राकृत। स्वप्नवासवदत्त के छठे अङ्क में पहले मिश्र-विष्कम्भक आया है। जिन घटनाओं का अभिनय कवि अनावश्यक समझता है, उन्हीं का सकेत विष्कम्भक द्वारा कर देता है।

प्रवेशक—जहाँ दो अङ्कों की भूत और भविष्यत्काल की घटनाओं को दो नीच पात्रों द्वारा एक सूत्र में बाँधा जाता है, वहाँ 'प्रवेशक' होता है। इसकी भाषा प्राकृत होती है। अन्य सभी बातों में विष्कम्भक के समान होता है।

कञ्चुकी—अन्तःपुर में नियुक्त बूढ़े सेवक को कञ्चुकी कहते हैं। यह सत्यवादी, कामविकार से रहित, शुद्ध चरित वाला तथा काम-काज में चतुर होता है। 'कञ्चुक' लम्बे चोगे को कहते हैं और चोगा धारण करने से ही इसका ऐसा नाम पड़ा है।

विदूषक—यह नाटक के नायक का धर्मसचिव होता है। ब्राह्मण होते हुए भी यह प्राकृतभाषी है। विचित्र वेष धारण करने से, अनोखी चेष्टाओं और अंगविकारों से हँसी उत्पन्न करता है। यह प्राय भोजन-प्रिय होता है।

स्वगत या आत्मगत—जब कोई पात्र अपने-आप मे बात करता है और दूसरों को सुनाना नहीं चाहता, तब इसका प्रयोग किया जाता है। आजकल इसे अस्वाभाविक समझा जाता है। इतनी दूर बैठे हुए दर्शकों का सुन लेना और पास वाले व्यक्ति का न सुनना असम्भव प्रतीत होता है।

अपवारित या अपवार्य—जब एक पात्र इस प्रकार से बात करे

१८. अर्थिस्त्वं नाम शरीरमपराध्यति। [पृ० १४६, पं० १२]

जब वासवदत्ता के असली रूप का पता लग जाता है, तो पद्मावती उसे अपनी बड़ी बहन समझ कर प्रणाम करती है और यह कहते हुए क्षमा मांगती है कि "मैंने अनजान में आप से सखी जैसा व्यवहार करने से शिष्टाचार का उल्लंघन किया है।" इसके उत्तर में वासवदत्ता कहती है—"मेरा अपना शरीर ही अपराधी है" तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं। भाव यह है कि यदि अपना रूप छिपा कर मैं तुम्हारे पास न रहती तो इस प्रकार की परिस्थिति कभी उपस्थित ही न होती। इसलिए तुम सर्वथा निर्दोष हो।

नाटक-सम्बन्धी परिभाषाएँ

नान्दी—यह मङ्गलाचरण का पद्य होता है। नाटक के आरम्भ से पूर्व निर्विघ्न समाप्ति की इच्छा से जो देवता, ब्राह्मण, राजा अथवा किसी महापुरुष की स्तुति की जाती है, उसे 'नान्दी' कहते हैं।

स्वप्नवासवदत्त में 'उदयनवेन्दु०' इत्यादि पद्य नान्दी के समान श्रव्य है, परन्तु नाटककार ने इसे नान्दी नहीं माना है। यहाँ सूत्रधार पहले प्रवेश करता है और उपर्युक्त मङ्गल पद्य पढ़ता है। यह भास का भिन्न क्रम है। अन्यत्र ऐसा उदाहरण नहीं मिलता।

सूत्रधार—नाटक के सम्पूर्ण कार्यों के चलाने वाले व्यक्ति को सूत्र-धार कहते हैं। जहाँ पात्रों की वेषभूषा तथा अन्य बहुत से कार्य इसी पर निर्भर होते हैं, वहाँ रङ्गमञ्च के देवता की पूजा भी यही करता है।

नेपथ्य—जहाँ पर नट लोग वेषरचना करते हैं और मञ्च पर जाने तक प्रतीक्षा करते हैं। यह स्थान परदे के पीछे होता है और दर्शक इसे देख नहीं सकते।

प्रस्तावना—नान्दी के उपरान्त जो नटी, विदूषक अथवा पारि-पार्श्विक नाटक के खेलने से सम्बन्ध रखने वाली बातें सूत्रधार से कहते हैं और नाटक में होने वाली घटना तथा पात्र-प्रवेश की सूचना संकेत मात्र से देते हैं, उसे 'प्रस्तावना' कहा जाता है। भास के नाटकों में इस

समान सहनशील है। सन्तोष का तो कहना ही क्या, पति के प्रेम को उसी के मुख से सुनकर तो उसे बड़ी प्रसन्नता होती है और 'दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य' इत्यादि कहते हुए सारी विपत्तियों को भूल जाती है। उसे अपने पति के दूसरे विवाह को देखकर कुछ समय के लिए कुछ उदासी तो अवश्य आती है, परन्तु वह पतिप्रेम की सरिता में तत्काल ही डूब जाती है।

पद्मावती को लीजिए। वह भी सुन्दरी, लज्जावती तथा माधुर्य और प्रेम की मूर्ति है। उसको द्वेष छू तक भी नहीं गया। इस दृष्टि से तो वह वासवदत्ता से भी बढ़ जाती है। जब राजा विदूषक के पूछने पर स्पष्ट रूप से वासवदत्ता के प्रति विशेष प्रेम स्वीकार करता है, तब पद्मावती की चेटी राजा के इस व्यवहार पर बहुत असन्तोष प्रकट करती है। परन्तु पद्मावती के मन में ज़रा भी खेद नहीं होता बल्कि वह प्रसन्न होती है और यह कहते हुए 'सदाक्षिण्य एव आर्यपुत्र य इदानी-मप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति' राजा की प्रशंसा करती है।

विनय तथा नम्रता की दृष्टि से भी पद्मावती का चरित्र अपनी समता नहीं रखता। जब उसे वासवदत्ता के वास्तविक स्वरूप का पता लगता है तो वह घबराती है और नम्रतापूर्वक क्षमा माँगती है कि कहीं उससे अनजान में कोई अपराध न हो गया हो। यह उसके चरित्र की बड़ी भारी विशेषता है।

अन्य बातों में चाहे पद्मावती वासवदत्ता के समान ही मानी जाय परन्तु महान् त्याग और कठिन विपत्ति में सब कुछ सह लेना आदि ऐसे गुण हैं जो वासवदत्ता को नायिका होने के योग्य बनाते हैं।

(२) स्वप्नवासवदत्त के आधार पर भारत की उस समय की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अवस्था का वर्णन कीजिए।

जहाँ तक भासकालीन भारत की धार्मिक स्थिति का सम्बन्ध है, स्वप्नवासवदत्त से हमें बहुत कम ज्ञान प्राप्त होता है। नाटक का प्रारम्भिक श्लोक इस विषय पर थोड़ा-सा प्रकाश डालता है। इस अधिक

कि केवल वही पुरुष सुन सके जिसे वह अपनी बात सुनाना चाहता हो, तब उसे 'अपवारित' अथवा 'अपवार्य' करते हैं।

आकाशभाषित—जब एक पात्र स्वयं प्रश्न करके उसका उत्तर 'क्या कहते हो' इन शब्दों से आरम्भ करे मानो जिस प्रकार वह आकाश से सुन रहा हो, तब उसे 'आकाशभाषित' कहते हैं।

प्रकाश—स्वगत तथा अपवारित के बाद जब सबको सुनाने के लिए बात की जाती है, तब उसे 'प्रकाश' कहते हैं।

प्रतीहारी—प्रतीहारी द्वाररक्षिका को कहा जाता है।

भरतवाक्य—नाटक की समाप्ति पर, जो दर्शकों के कल्याण की कामना की जाती है अथवा उन्हें आशीर्वाद दिया जाता है, उसे 'भरतवाक्य' कहते ।

परीक्षा-सम्बन्धी प्रश्न

पद्मावती और वासवदत्ता के चरित्रों का तुलनात्मक परिचय दो।

पद्मावती और वासवदत्ता इन दोनों के चरित्रों की तुलना करते हुए, यह कहना इतना सरल नहीं कि इन दोनों में से किसका स्थान अधिक ऊँचा है। जिसके गुणों को देखो, बढ़चढ़कर दिखलाई देती है। इसमें सन्देह नहीं कि बड़ी होने से अथवा महान् त्याग करने से वासवदत्ता नायिका के पद को प्राप्त करती है, परन्तु जहाँ तक स्वभाव तथा अन्य गुणों का सम्बन्ध है, पद्मावती भी उससे कदाचित् पीछे नहीं रहती।

वासवदत्ता का सौंदर्य, सहनशीलता, आत्मगौरव तथा पतिप्रेम सर्वथा श्लाघ्य है। जिस परीक्षा में वह अपने-आपको डाल देती है वह एक स्त्री के लिए अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार वासवदत्ता ने अज्ञात-वास स्वीकार करके अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी है, इस प्रकार का उदाहरण किसी भी इतिहास में मिलना कठिन है। स्वामी की भलाई ही उसका एकमात्र लक्ष्य है। एक पतिव्रता स्त्री के लिए इससे बढ़कर और क्या हो सकता है? वह समुद्र के समान गम्भीर और पृथ्वी के

समान सहनशील है। सन्तोष का तो कहना ही क्या, पति के प्रेम को उसी के मुख से सुनकर तो उसे बड़ी प्रसन्नता होती है और 'दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य' इत्यादि कहते हुए सारी विपत्तियों को भूल जाती है। उसे अपने पति के दूसरे विवाह को देखकर कुछ समय के लिए कुछ उदासी तो अवश्य आती है, परन्तु वह पतिप्रेम की सरिता में तत्काल ही डूब जाती है।

पद्मावती को लीजिए। वह भी सुन्दरी, लज्जावती तथा माधुर्य और प्रेम की मूर्ति है। उसको द्वेष छू तक भी नहीं गया। इस दृष्टि से तो वह वासवदत्ता से भी बढ़ जाती है। जब राजा विदूषक के पूछने पर स्पष्ट रूप से वासवदत्ता के प्रति विशेष प्रेम स्वीकार करता है, तब पद्मावती की चेटी राजा के इस व्यवहार पर बहुत असन्तोष प्रकट करती है। परन्तु पद्मावती के मन में ज़रा भी खेद नहीं होता बल्कि वह प्रसन्न होती है और यह कहते हुए 'सदाक्षिण्य एव आर्यपुत्र. य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति' राजा की प्रशंसा करती है।

विनय तथा नम्रता की दृष्टि से भी पद्मावती का चरित्र अपनी समता नहीं रखता। जब उसे वासवदत्ता के वास्तविक स्वरूप का पता लगता है तो वह घबराती है और नम्रतापूर्वक क्षमा माँगती है कि कहीं उससे अनजान में कोई अपराध न हो गया हो। यह उसके चरित्र की बड़ी भारी विशेषता है।

अन्य बातों में चाहे पद्मावती वासवदत्ता के समान ही मानी जाय परन्तु महान् त्याग और कठिन विपत्ति में सब कुछ सह लेना आदि ऐसे गुण हैं जो वासवदत्ता को नायिका होने के योग्य बनाते हैं।

(२) स्वप्नवासवदत्त के आधार पर भारत की उस समय की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अवस्था का वर्णन कीजिए।

जहाँ तक भासकालीन भारत की धार्मिक स्थिति का सम्बन्ध है, स्वप्नवासवदत्त से हमें बहुत कम ज्ञान प्राप्त होता है। नाटक का प्रारम्भिक श्लोक इस विषय पर थोड़ा-सा प्रकाश डालता है। हम अधिक

जी नहीं, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि उन दिनों बलदेव-पूजा का प्रचार था। कृष्ण जी के स्थान पर बलदेव जी को विष्णु का अवतार माना जाता था। चतुर्थ अङ्क में विदूषक के कथनानुसार स्वर्ग और अप्सराओं का भी विवरण मिलता है जिससे उन दिनों भी लोग स्वर्ग और अप्सराओं के विषय में विश्वास रखते थे, ऐसा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त वेदों का पठन-पाठन तथा ईश्वर-भक्ति के लिए तपोवन में निवास इत्यादि बातों का भी पता चलता है जिससे लोगों का जीवन अवश्य धर्म के अनुसार विकास को प्राप्त होता होगा, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

सामाजिक स्थिति के विषय में भी कुछेक बातें ज्ञात होती हैं। वर्णाश्रम-व्यवस्था पर पूरी तरह चलने के उदाहरण मिलते हैं। पत्नी और पति का जीवन आदर्श जीवन होता था। स्त्रियाँ पतिव्रता और धार्मिक होती थीं। राजाओं में एक से अधिक विवाह करने की प्रथा थी। गान्धर्व-विवाह भी प्रचलित था। स्त्रीशिक्षा का भी प्रचार था। स्त्रियों को पढ़ने-लिखने की शिक्षा के अतिरिक्त ललित कलाओं—वीणा बजाना तथा संगीत आदि—की भी शिक्षा दी जाती थी।

राजनीतिक अवस्था इतनी सुधरी हुई नहीं थी। देश अनेक भागों में विभक्त था। एक राजा दूसरे राजा को दबाने की फ़िकर में रहता था। मगध, मालव और वत्स राज्यों का वर्णन मिलता है। राजा लोग बड़ी-बड़ी सेनाएँ भी रखते थे। सेना के सञ्चालक को सेनापति कहते थे। सेना के चार भाग—पैदल, हाथी, रथ और घोड़े हुआ करते थे। युद्ध की दृष्टि से अधिक उन्नति नहीं थी। अस्त्र-शस्त्रों का विशेष उल्लेख नहीं मिलता। केवल बाणों से युद्ध होता था। परन्तु फिर भी युद्ध की कूट-नीति से राजा लोग पूर्णतया परिचित थे। "भिन्नास्ते रिपवो भवद्‌गुण-रता पौरा समाश्वासिता." इत्यादि श्लोक से पता चलता है कि सेना-सम्बन्धी सारी आवश्यक बातों को ध्यान में रखकर शत्रु पर आक्रमण किया जाता था। सेना-संचालन भी अपने ही ढंग का था।

(३) इस नाटक का नाम स्वप्नवासवदत्त क्यों रखा गया ?

इस नाटक की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना स्वप्न दृश्य है। नाटककार ने इस दृश्य को सफल बनाने में किसी प्रकार की भी कमी नहीं रही। इस दृश्य को कवि ने ऐसे चातुर्य से प्रस्तुत किया है कि राजा वासवदत्ता को देख लेने पर भी नहीं देखता। उसे वासवदत्ता के जीवित होने का सन्देह अवश्य हो जाता है और किसी हद तक विश्वास भी हो जाता है। नाटकीय दृष्टि से इसीलिए यह दृश्य भास को अधिक पसन्द आया है। इस दृश्य से ही नायक और नायिका के मिलने की आशा दिखाई देने लगती है। इसी दृश्य के कारण ही राजा अन्त में बिना किसी विशेष असमंजस के वासवदत्ता को स्वीकार कर लेता है। नाटककार यदि नायक और नायिका के अन्तिम मिलन से पहले यह भूमिका न बाँधता तो इतनी अच्छी तरह अन्तिम मिलन होना अस्वाभाविक-सा जान पड़ता और नाटक के सौन्दर्य के लिए हानिकारक होता। राजा को वासवदत्ता की चरित्रशुद्धि के विषय में इस दृश्य के कारण विश्वास हो जाता है, और कोई भी बात ऐसी नहीं रहती जो नाटक की प्रगति के लिए बाधक हो सके।

(४) स्वप्नवासवदत्त के प्रथम अङ्क में ब्रह्मचारी को लाने में नाटकीय महत्त्व क्या है ? ब्रह्मचारी के आगमन से कथा के प्रवाह में कैसे सहायता मिलती है ?

यौगन्धरायण के कहने के अनुसार यद्यपि वासवदत्ता ने अज्ञातवास करना स्वीकार कर लिया, तो भी पद-पद पर उसका मन डाँवाडोल हो रहा था। वह यौगन्धरायण के साथ तपोवन में चली आई, परन्तु तरह-तरह के बुरे विचार उसको बार-बार चिन्तित कर रहे थे। उसकी व्याकुलता का सबसे बड़ा कारण उदयन था। उसे सन्देह था कि कहीं वह वियोग के कारण प्राण ही न दे दे। ऐसी परिस्थिति में ब्रह्मचारी आता है और लावाणक ग्राम की घटना बता कर राजा के शोक का वर्णन करता है। वासवदत्ता पहले तो बहुत घबरा जाती है, परन्तु यह

जान कर कि अब रुमण्वान् मन्त्री की सहायता से राजा की अवस्था सुधार रही है, वह ठण्डी साँस लेती है। ब्रह्मचारी के इस वर्णन से, एक तो वासवदत्ता के मन में राजा के प्रेम की सत्यता का सिक्का बैठ जाता है और दूसरे वह राजा के विषय में निश्चिन्त हो जाती है।

उपर्युक्त घटना का प्रभाव न केवल वासवदत्ता पर ही पड़ता है, बल्कि पद्मावती पर भी। इसी वर्णन को सुनकर पद्मावती के मन में राजा के प्रति प्रेम का बीज अंकुरित होता है। ब्रह्मचारी के मुख से राजा की प्रशंसा सुनकर उसे विश्वास हो जाता है कि राजा अवश्य ही सर्वगुण-सम्पन्न और प्रेमी है। राजा की विपत्ति के कारण पद्मावती का सुकुमार हृदय हाहाकार करने लगता है। यहाँ तक कि वह 'मोह गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्' कहने के लिए विवश हो जाती है। ऐसे व्यक्ति के लिए जिसे अभी तक उसने देखा तक भी नहीं, ऐसे शब्दों का प्रयोग उसके हृदय की कोमलता को व्यक्त करता है।

ब्रह्मचारी के प्रवेश के कारण वासवदत्ता के सन्देह दूर हो जाते हैं और पद्मावती के मन में राजा के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है। यौगन्धरायण को भी रुमण्वान् की स्वामि-भक्ति का परिचय जाता है। इसलिए तीनों अपने-अपने कर्तव्य-पथ पर निःशङ्क होकर चलने लगते हैं। कथा-प्रवाह वेग से आगे की ओर बढ़ने लगता है। यदि ब्रह्मचारी का प्रवेश न कराया जाता तो होने वाली घटनाओं के लिए भूमि तैयार न होती और कथा किसी भिन्न दिशा की ओर ही वह निकलती।

(५) वासवदत्ता को पद्मावती के हाथो सौंपने में यौगन्धरायण ने क्या भलाई सोची थी?

जब उदयन के राज्य का बहुत-सा भाग उसके शत्रु आरुणि ने छीन लिया तो उसके मन्त्री रक्षा का उपाय सोचने लगे। परिस्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि अकेले शत्रु का सामना करना कठिन था। केवल एक ही उपाय था—राजा का मगधराज की बहन पद्मावती से विवाह। ऐसी अवस्था में मगधराज से सैनिक सहायता मिलने पर नष्ट राज्य लौटाया जा

सकता था। परन्तु वासवदत्ता के जीवित रहते हुए विवाह सम्भव नहीं था। इसलिए वासवदत्ता को थोड़े समय के लिए रास्ते से हटाने की आवश्यकता थी। उसे किसी के पास धरोहर रखकर मृत घोषित कर देने से सब काम ठीक हो सकता था। परन्तु किसके पास रखा जाय यह एक विकट समस्या थी। यौगन्धरायण ने सोचा कि यदि पद्मावती के के पास रखा जाय तभी ठीक हो सकता है अन्यथा नहीं। किसी और के पास रखने से वासवदत्ता के चरित्र के विषय में सन्देह उत्पन्न हो सकता है। परन्तु पद्मावती के साथ राजा का विवाह हो जाने पर जब वासवदत्ता का भेद खुलेगा तो पद्मावती चरित्र-शुद्धि का विश्वास दिला सकेगी। इस अवस्था में राजा को वासवदत्ता के स्वीकार करने में किसी प्रकार की भी आपत्ति नहीं होगी।

दूसरे वासवदत्ता का प्रच्छन्न वेष में पद्मावती के पास रहना और बातों के लिए भी अच्छा था। दोनों में सखी-भाव हो जाने के कारण उनके भविष्य जीवन के भी सुखमय होने की सम्भावना थी। ऐसी अवस्था में पद्मावती को छोड़कर और किसी के पास वासवदत्ता को रखना कदापि अनुकूल नहीं कहा जा सकता था।

चुनी हुई सुभाषितावलि

अकरुणाः खल्वीश्वरा ।

अभित एव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।

अनतिक्रमणीयो हि विधिः ।

अनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ।

अन्यासनपरिग्रहेणाल्प इव स्नेहः प्रतिभाति ।

अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति ।

अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते ।

अयुक्तं परपुरुषकीर्तनं श्रोतुम् ।

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ।

श्रद्धा खल्वियमाकृतिरस्य वहुमानस्य ।

आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।

एव लोकस्तुल्यधर्मो वनाना काले काले छिद्यते रुह्यते च ।

क. क शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले ।

कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति वहुदोषमुत्पादयति ।

कालक्रमेण जगत. परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्ति ।

कातरो येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।

तथा परिश्रम परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभव. ।

तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिप. ।